प्रस्तावना

जिस प्रकार भौतिक विज्ञान (साइन्स) उन्नति करता हुअ
ाग बढ़ रहा है, उसी तरह योग फिलासफी में भी समयानुसा
-नये अन्वेषण होते रहे हैं । देशकाल पर दृष्टि डालके इ
ग विद्या के आचार्य्य भी इसमें सरलता देते आये हैं । इ
ा का मनुष्य योग के कठिन साधनों के योग्य नहीं रहा, ऊ
चीन कियाओं में पड़ के वह अपना कल्याण नहीं कर सकता
र दिव्य पुरुषों को जब ऐसा भास हुआ तो उनके अन्द
ा का स्रोत उमड़ा, और हम कलियुग वासियों के लिये उन्हों
ा विद्या में सरलता देनी आरम्भ करदी। अब से कुछ व
े ऐसी ही एक मोक्ष आत्मा अपने निज धाम से उतर ी
ा नर शरीर में आई; और "समर्थ गुरू जी महात्मा रामचन्द्रजी"
नाम से प्रसिद्ध हुई। इन महात्मा ने इसको इतना सरल
ाया कि नित्य-प्रति चन्द मिनटों के ही अभ्यास से जिज्ञासु
ना ऊँचा उठ जाता है कि जिसको दूसरे योगी वर्षों में भ
ीं प्राप्त कर पाते। इस पुस्तक में इसी नवीन शैली पर प्रकाश
ा गया है।

पुस्तक में तीन खंड हैं। प्रथम खण्ड में 'योग' शब्द की विस्तृ
त्या है जो अनेक प्रमाणों द्वारा बताई गई है। मनोमय व
ज्ञानमय कोषों में साधकों को क्या अवस्थाएं आती है

समाधी के कितने भेद हैं और उनमें क्या २ अनुभव होने हैं, यह सब खोल २ के बतलाया गया है। द्वितीय खंड-योग की नवीन साधना और योग के इतिहास पर प्रकाश डालता है। तृतीय खंड में योग और मिस्मरेज्म का भेद दिखाया है। इस खंड में उन सब गुप्त रहस्यों को खोल २ के वर्णन किया किया गया है जिनकी विरले ही योगियों को खबर होगी। अध्यात्म विद्या के मुमुक्षुओं को इसे अवश्य ही अपने पास रखना चाहिये और बारम्बार पढ़ उस पर अमल करना चाहिये।

भवदीय-

हेमेन्द्रकुमार बी० एस-सी० एल-एल० बी०

मैनेजर 'साधन प्रेस,' मथुरा।

योग क्या है ?

★

योग क्या है, अथवा योग किसको कहते हैं—? इस विषय पर एक अनुभवी विद्वान बहुत कुछ लिखसकता है, क्योंकि इस अकेले योग शब्द के अन्तर्गत व्यवहार और परमार्थ के सारेही काम आजाते हैं। योग-स्वाभाविक ही प्रत्येक प्राणी से हर समय होता रहता है। हम खाते हैं, पीते हैं, सोते हैं, जागते हैं, पढ़ते हैं, लिखते हैं, सुनते हैं, कहते हैं, इत्यादि। जिन कर्मों को हमने साधारण और व्यावहारिक काम समझ रक्खा है वह सब ही योग हैं। योग से खाली कोई भी काम हमारा हो नहीं सकता। जब तक किसी कार्य को पूर्ण योग (concentration) के साथ हम न करें, तब तक उनमें सफलीभूत नहीं हो सकते।

प्रायः आज-कल के मनुष्य योग शब्द से बहुत डरते हैं। अधिकांश लोगों का ऐसा विचार है कि योग कोई कठिन वस्तु है कि जो गृहस्थी में रह कर किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकती। जब तक मनुष्य घरबार छोड़ कर बनवासी बन गिरि कन्दराओं में निवास न करे तब तक वह कभी भी योग न कर सकेगा। इसी बात को दृष्टि में रख कर इस विषय पर लेखनी उठाने का साहस किया है। योग को जैसा कुछ अभी तक हमने समझा है, उसको

ही संक्षेप में आप लोगों को बतलाना चाहते हैं। यद्यपि विषय गहन है परन्तु थोड़ा सा ध्यान देने पर ही बात आप की समझ में आ सकती है।

योग का साधारण अर्थ मेल व मिलाप है। जब हम अपनी किसी इच्छित वस्तु से तन्मय होकर मिलते हैं तो उसी अवस्था को "योग" कहते हैं, चाहे वह सांसारिक वस्तु हो या पारमार्थिक। जब हम किसी पुस्तक को पढ़ते हैं, अथवा किसी दूसरे कार्य को करने लगते हैं, तो थोड़ी देर के लिये कभी-कभी हमारी ऐसी अवस्था हो जाती है, कि जिस में हमको अपनी सुधि बुधि नहीं रहती, हम सर्वतोभावेन उसी कार्य के रूप बन जाते हैं। वास्तव में इसी अवस्था का नाम "योग" है। इसके अतिरिक्त और योग कुछ नहीं है।

योग स्वाभाविक धर्म है

ऊपर हम यह बतला चुके हैं कि जीवन के प्रत्येक क्षण में हमको योग साधना करनी होती है परन्तु हम उसको समझा नहीं सकते कि ऐसा क्यों होता है? इस लिये कि वह हमारा स्वभाव ही है। हम आगे चल कर अष्टाङ्ग योग के साथ-साथ इस की विशेष व्याख्या करेंगे। हाँ! यहां पर एक बात विचारने की है कि ऐसा क्यों होता है? लीजिये सुनिये:—संसार के प्रत्येक प्राणी को चाहे वह कीट और पतङ्ग हो, चाहे पशु और पक्षी हो, चाहे मनुष्य या देवता हो सब को एक ही वस्तु की खोज

है, और वह है—हर्ष (खुशी) वा आनन्द। हम पढ़ते हैं, लिखते हैं, नौकरी या कोई कारोबार करते हैं इसलिये कि उसमें धन की प्राप्ति होगी, और धन से सुख वा आनन्द मिलेगा। मनुष्य विवाह करता है, सन्तान उत्पन्न करता है, मकान जायदाद, सवारी, शिकारी सब इसी लिये तो है, कि एश्वर्य का भोग कर वह आनन्दित होगा। सम्बन्धियों और प्रेमियों से जा-जा कर इसीलिये मिलता है कि मिलने के समय उसे खुशी व आनन्द प्राप्त होता है। इसलिये ही यह कहा जाता है कि योग में सुख है और वियोग में दुख है। वियोग क्यों होता है? इसलिये कि यह सारी ही वस्तुएँ स्थायी नहीं हैं, परिवर्तनशील और नाशवान हैं। संसार की गति के साथ साथ परिवर्तित होती रहती हैं। जिस शरीर को तुम सब से अधिक प्यार करते हो उस की अवस्थाएँ भी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध किसी प्रबल शक्ति की प्रेरणा से बदलती चली जाती हैं और जहाँ एक समय में तुमको हर्ष होता है तो दूसरे समय में तुमको शोक भोगना पड़ता है। इस अवस्था का नाम शास्त्रों ने "द्वन्द्व" की अवस्था रक्खा है। द्वन्द्वावस्था में प्राणी कभी रोता है, कभी हँसता है, हर्षित होता है और कभी दुखित होता है। भँवर में पड़े हुये मनुष्य की तरह उछलता है और डूबता है। वास्तव में यह बड़े दुःख की अवस्था है।

उसे आनंद की तलाश थी, परन्तु आनंद का पता नहीं मिला। उसे सुख और शान्ति की चाहना थी परन्तु यह वस्तुएँ उसे

छू ढे से भी नहीं मिल रहीं। जैसे अज्ञानी बालक मिट्टी के झूठे खिलौने को सच्चा मान कर प्रसन्न हो लेता है, इसी प्रकार मनुष्यों की दशा है। संसार की सभी वस्तुएँ मिट्टी के झूठे खिलौने हैं। दैवी शक्ति उनको बनाती है बिगाड़ती है। एक सुन्दर फूल आज खिलता है तुम देख कर उसे खुश होते हो कल वही फूल तुम्हारे देखते देखते मुरझा के गिर पड़ता है, यह सब उसी जगद् जननी माता के कार्य हैं। दूर क्यों जाते हो, अपने ही को देखो तुम रोग मुक्त रहना चाहते हो परन्तु नहीं रह सकते। तुम युवावस्था को नहीं जाने देना चाहते, परन्तु थोड़े ही दिन के पश्चात् वह तुमसे छीन ली जाती है और तुम दुखित हो जाते हो इत्यादि। परन्तु ऐसा क्यों होता है? हमारी इच्छा के विरुद्ध हमको क्यों चलना पड़ता है? हम सुखी रहना चाहते हैं परन्तु विवशता से क्लेशों में क्यों फँस जाते हैं? भगवद्गीता इसका उत्तर खुले शब्दों में दे रही है।

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन, तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्व भूतानि, यन्त्रा रूढानि मायया॥

कारण यह है कि हम स्वाधीन नहीं हैं। एक विशेष शक्ति (Super human power) के बन्धन में पड़े हुये पराधीनता का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। प्रत्येक प्राणी का ऐसा स्वभाव है कि वह बन्धन त्याग कर मुक्त रहना चाहता है, और यह उस समय तक नहीं हो सकता जब तक उस शक्ति पर हमारा अधिकार

न हो जाय, चाहे वह किसी तरह भी हो। इसी अवधि का नाम "योग" है। इसको "मुक्ति व मोक्ष" कहते हैं।

इसी मुक्ति के अनेक नाम हैं। सुख, हर्ष, आनन्द इत्यादि सब मुक्ति के ही पर्यायवाची शब्द हैं। इस आनन्द व मुक्ति की प्रत्येक प्राणी को स्वाभाविक ही अभिलाषा है और वह योग बिना प्राप्त नहीं होती। इसलिये यह कहा जाता है कि "योग मनुष्य का स्वभाविक धर्म है।

आनन्द अपने में है

यहाँ पर एक बात विचारने की और रह जाती है कि जब हम किसी वस्तु को प्राप्त कर आनन्दित होते हैं तो वह आनंद कहाँ से आता है? आनंद किसी बाहरी पदार्थ में नहीं है, वह अपने अन्दर आत्मा में है, आत्मा-सत्य ज्ञान-मयी या चैतन्य है और आत्मा ही आनंद-मयी है। उपनिषदों में जो सद्चिदानन्द ब्रह्म का वर्णन आया है वह और कोई नहीं है. यही आत्मा है। यही ब्रह्म है। (ब्रह्म के अर्थ बड़े के हैं)। उपनिषदें कहती हैं—अणोरणीयान महतो महीयान्-आत्मा छोटे से छोटी है, आत्मा बड़े से बड़ी है। हम अपने को छोटा बना सकते हैं और हम अपने को विस्तृत कर सकते हैं। आत्मा हमारे अन्दर है उसमें से हर समय आनन्द की धारायें निकला करती हैं, परन्तु हम अपना मुख आत्मा की ओर से फेर के बाहर की ओर कर लेते हैं, इसी कारण उनका अनुभव हमको नहीं होता। यदि एक बेर भी पल-मात्र के लिये हम

अपने स्वस्थान में बैठ सकें तो अवश्य ही उतनी देर के लिये उस अमृत जल मे डुबकियाँ लगाने लगें।

हम क्यों अपने निज स्थान में नहीं बैठ पाते ? इसका कारण यह है कि हम मन के वशीभूत हैं और हमारा मन खिलाडी बालक की तरह हर समय बाहर ही खेलता रहता है। घर में बैठना और घर की वस्तुओं पर दृष्टि डालना उसको भाता ही नहीं है। हाँ ! यदि किसी भूठे खिलोने को बाहर से घर के भीतर लासकें तो उसका प्यार करने वाला यह हमारा मूर्ख मन भी उसके साथ-साथ घर में चला जाता है और वहीं पर उसके साथ क्रीडा करने लगता है। खेलते खेलते कभी कभी उसकी दशा ऐसी हो जाती है कि वह अपने को भी भूल जाता है। उसकी चञ्चलता थोड़ी देर के लिये रुक जाती है। उसके संकल्प विकल्प नाश हो जाते हैं। बस उसी क्षण वह हर्ष और आनन्द पाने लगता है, इसीलिये तो यह कहते हैं कि आनन्द बाहर की वस्तु में नहीं है, वह अपने अन्तर में है और इसे हम केवल एकाग्रता (Concentration) से ही प्राप्त कर सकते हैं, चाहे वह एकाग्रता सत् पदार्थ पर हो या असत् वस्तु पर।

साइंस बतलाती है कि जब हम किसी बाह्य पदार्थ को देखते हैं व छूते हैं तो उसका ज्ञान हमको बाहर ही नहीं हो जाता है। उसका बिम्ब (Photo) अथवा फोकस हमारे अन्तःकरण पर पड़ता है और बुद्धि (Mind) निर्णय करने में लग जाती है, और अन्त में ा नाम और रूप गढ़ देती है।

मन उसी विचार (Thoughts) को इन्द्रियों द्वारा प्रकट करने लग जाता है। प्रति दिन यह व्यवहार हम में होता रहता है और इसी प्रकार हम प्रत्येक वस्तु का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

इसीलिये तो हम कहते हैं कि भोग बाहर नहीं है हमारे अन्तर में है और भोगानन्द व विषयानन्द भी हम से अलग नहीं है, वह भी हमारे घर में ही है।

योग कितने प्रकार का होता है ?

उपरोक्त कथन से हमारा तात्पर्य केवल इतना ही था कि योग कोई ऐसा कठिन कार्य नहीं है जिसका नाम सुनते ही हम चौंक जायँ और एक दम कहने लगें कि योग हममें नहीं हो सकेगा। जिस कार्य को तुम हर समय करते रहते हो, जिसके द्वारा तुम विषयानन्द लूटते रहते हो, वही तो योग है। वही योग साधन है। कोई नई बात नहीं करनी, कोई नया साधन नहीं सीखना, केवल लक्ष्य (Ideal) बदलना है। अब तक असत और बाह्य पदार्थों में हम योग क्रिया करते थे, अब सत और आन्तरिक वस्तु की ओर मुख फेर देना है, बस इसीका नाम योग है। इसीसे तुम अमृत बन सकते हो, इसीसे कैवल्य व निर्वाण प्राप्त कर सकते हो। यदि अपने जीवन का व्यर्थ (बेकार) समय भी इसके अभ्यास में लगा सको अथवा प्रतिदिन पन्द्रह या बीस मिनट भी इसकी प्रेक्टिस (Practice)

के लिये किसी तरह दे सको तो हम तुमको निश्चय कराते हैं कि तुम अति शीघ्र पूर्ण योगी बन सकते हो।

हमारी बातों पर तुम हँसने लगोगे, हमें झूठा समझोगे, परन्तु हम बिल्कुल सत्य सत्य लिख रहे हैं। हम अपने अनुभव की बात तुमको बता रहे हैं चाहे मानो या न मानो, यह तुमको अधिकार है। जिन साधना से हमको लाभ हुआ, जिन सरल क्रियाओं से हमारे साथियों को लाभ पहुँच रहा है, वही साधन तुम्हारे लिये भी उपयोगी हो सकते हैं। कठिनता का ख्याल दिल से निकाल करो, आजमाओ, परीक्षा करो। एक सप्ताह में ही तुम कुछ के कुछ बन सकते हो। कोई परिश्रम नहीं करना होगा। संसार के किसी व्यापार को बन्द नहीं करना पडेगा। और तुम अति शीघ्र (दो या चार दिन पीछे) शान्ति माता की गोदी में पड़ा हुआ अपने को पाओगे। उस समय तुम धन्य होगे और तुम्हारा यह मनुष्य जीवन भी धन्य हो जायेगा।

हर एक काम करने के लिये कठिन क्रियायें भी हैं और और सरल भी। एक लड़का जिस प्रश्न को स्कूल में बड़ी कठिनता के साथ स्लेट पेंसिल से बड़ी देर में निकाल पाता है दूसरा लड़का उसी सवाल (Question) को छड़े में जरा सी देर में निकाल लेता है इसीलिये कि इसको इसकी "क्रिया" मालूम है। उत्तर दोनों एक ही होता है। व्यापारियों के लड़के बाजार में रोज ही ऐसा करते देखने में आते हैं। हमको भी श्री गुरुदेव की कृपा से ऐसे ही गुर मालूम हो गये हैं। यदि आपकी

इच्छा हो तो निस्संकोच भ्रातृ-भाव व मित्रता (Friendly) के भाव से हमसे पूछ सकते हो, हम हर समय बताने को तैयार हैं। हम उसका मूल्य भी नहीं चाहते और न किसी के साथ गुरु और शिष्य का भाव रखते हैं। जो साधन हमको मालूम है उससे सब ही लाभ उठावें, ऐसी इच्छा हमको स्वयं ही रहती है। और यदि अपनी इच्छा पूर्ति के लिये हम ऐसा कर रहे हैं तो दूसरों पर क्या हमारा अहसान है। ओह! हम क्या कहना चाहते थे और क्या कहने लग गये परन्तु व्यर्थ इसमें से एक भी शब्द नहीं, सब मतलब की बात हैं।

अब फिर हम अपने उसी प्रश्न की ओर आते हैं कि-"योग कितने प्रकार का होता है"? सुनि-यह जगत त्रिगुणात्मक कहा जाता है। प्रकृति के तीन गुण १-सत २-रज और ३-तम व्याप्त होकर संसार का कार्य चला रहे हैं। इन तीन गुणोंसे तीन अवस्थाएँ उत्पन्न हुई हैं—१-कारण २ सूक्ष्म और ३-स्थूल। पहिले यह संसार कारणावस्था में आया, उसके पश्चात सूक्ष्मावस्था हुई, फिर सबसे पीछे स्थूल बन गया और चैतन्य आत्मा इसमें व्याप्त हो कर इसको संचालन करने लगा।

ब्रह्माण्ड की इन तीन अवस्थाओं का बिंब पिंड शरीर मे पड़ा और प्रत्येक प्राणी तीन शरीरों में बद्ध हो गया। १-कारण शरीर २-सूक्ष्म शरीर और ३-स्थूल शरीर, अब तक वह चैतन्य आनन्दस्वरूपा आत्मा था, अब उसकी संज्ञा जीव हो गई। अब तक वह समष्टि था, अब व्यष्टि हो गया अभी तक सर्वज्ञ

था, अब अल्पज्ञ हो गया। इस अल्पज्ञता को त्याग के सर्वज्ञता का प्राप्त कर लेना योग का आशय है। दुःख की अवस्था छूट जाय और सुख व शान्ति के धाम में निवास हो जाय, यही योग करने का मुख्य उद्देश्य है।

यों तो यह तीन अवस्थायें प्रत्येक प्राणी को मिली हुई हैं, सुख और दुःख का सभी अनुभव करते हैं परन्तु मनुष्य शरीर में समझ-बूझ की शक्ति (बुद्धि) अधिक होती है। जहाँ वह एक ओर दुःख व कलेशों का अनुभव कर सकता है वहाँ दूसरी ओर उससे छूटनेका उपाय कर सकता है। यह विशेषता केवल मनुष्य को ही प्राप्त है। इसीलिये इसको 'कर्म योनि' कहते हैं और शेष एक कम चौरासी लाख योनियों को चाहे वह देव, गन्धर्व इत्यादि किसी की योनि क्यों न हो 'भोग-योनि' कहते हैं। यदि हमने इस शरीर में अपना कार्य पूरा न किया तब तो दुःख से छूटने का समय हमारे लिये बहुत दूर हो जायेगा।

उपरोक्त कथन से हमने यह बात बताई थी कि मनुष्य को अपने व्यवहार के प्रत्येक कार्य में योग साधना करनी होती है बिना ऐसा किये हमारा कोई काम पूरा नहीं हो सकता, परन्तु हिन्दू जाति में व्यवहारिक कामों के लिये योग शब्द नहीं प्रयुक्त किया जाता। योग शब्द कहने मात्र से ही प्रत्येक हिन्दू व आर्य्य इस परिणाम पर पहुँच जाता है कि यह पारमार्थिक व आध्यात्मिक कार्य है। इसीलिये व्यवहारी पुरुषों ने इसकी ओर से ऐसी आँखें मींचीं कि योग के अर्थ व योग का

तात्पर्य्य ही उनके मस्तिष्क (दिमाग) से जाता रहा और वह सब इसका नाम सुन कर ही घबड़ाने लगे।

तुम प्रत्यक्ष देखते होगे कि तुम विशेषतया तीन चीजों के सहारे ही अपना कार्य्य चला रहे हो। १-शरीर, २-मन और ३-आत्मा। इन्हीं को १-स्थूल २-सूक्ष्म और ३-कारण कहते हैं।

इन में मन बीच की वस्तु है। यह जब इन्द्रियों की तृप्ति के लिये शरीर की ओर झुकाव कर लेता है तब इसको "व्यवहार" कहा जाता है और जब यह मन अपना मुख इधर से हटा कर आत्मा की ओर फेर लेता है तो उसीको "परमार्थ" कहते हैं। परमार्थ दो शब्दों से मिल कर बना है—१-परम और २-अर्थ (कार्य्य सिद्धि व मतलब)। तात्पर्य यह है कि हम इस समय एक ऐसे कार्य्य में लगे हुए हैं कि जो आगे चल कर हमारे लिये बहुत ही लाभदायक होगा यह परमार्थ के अर्थ हैं। परमार्थ के साथ व्यवहार हो और व्यवहार के साथ परमार्थ हो ऐसा स्वभाव बना लेना ही 'योग' कहलाता है। इसी को "साम्यावस्था" कहते हैं। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को जिस योग की शिक्षा दी है वह वास्तव में यही सम-योग है। कार्य्य करो पर स्वार्थ बुद्धि से न करो। यही "योग" है गीता बतलाती है :—

योगस्थः कुरु कर्माणि, सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय
सिद्धिसिद्धियोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

अर्थ—हे अर्जुन! आसक्ति को त्याग कर, कार्य की सफलता और असफलता को समान मान कर काम करो। यही सम भाव

"योग" कहलाता है । वास्तव में इसी साम्यावस्था को "समाधि" कहते हैं। प्राय आजकल के मनुष्य किसी हठयोगी को जब ऐसा देखते हैं कि उसने प्राणों को ब्रह्माण्ड में खींच कर सुप्त अवस्था उत्पन्न कर ली है तो एक दम चिल्ला उठते हैं कि फलाँ महात्मा ने समाधि लगाई है। अज्ञानियो! अपनी धर्म पुस्तकों को पढो। अपनी प्राचीन अध्यात्म विद्या का अध्ययन करो। तुम्हारे पूर्व पुरुषाओं ने जिस विद्या के द्वारा सारे संसार पर विजय प्राप्त की थी। जिस विद्या के कारण वह जगत में प्रतिष्ठित हुए थे आज तुम उनकी सन्तान अपने को कहलाते हुए ऐसे मूर्ख बन गये हो कि करना धरना तो दूर रहा ठीक और गलत का भी अन्दाजा नहीं लगा सकते। आज यदि एक अमेरिकन विद्वान टैलीपैथी (tele pathy) की पुस्तक तुम्हारे देश में भेज कर यह बतलाता है कि विचार (Thoughts) दूसरे के पास आकाश द्वारा किस तरह भेजे जाते हैं और किस तरह उनका उत्तर मगाया जाता है तो तुम चकित हो मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा करने लगते हो। अरे! कोई समय था कि इस टैलीपैथी के जानने वाले तुम्हारे देश में घर २ थे इसलिये तो उनको तार व तार इत्यादि की आवश्यकता नहीं पड़ी और अब इस पिछड़े हुए युग में भी भारतवर्ष खाली नहीं है। ऋषियों की सन्तान में ऋषि हमेशा ही रहेंगे। ऋषि क्रिया का लोप कभी नहीं होगा। हाँ! यह दूसरी बात है कि कभी थोड़े और कभी बहुत।

हठयोग की क्रियाओं में से एक क्रिया बहुत साधारण है कि जिसको 'कपालभाति' कहते हैं। इसका साधन सीखने पर एक

मास में वह सिद्धि हो जाती है। गृहस्थ मनुष्य भी अति सरलता से इसको कर सकता है। हाँ इसमें ६४ नाड़ी शुद्धि के लिये नेति, धोती, वस्ती इत्यादि करने पड़ते हैं। आहार शुद्ध रखना पड़ता है। इसके लिये प्राणायाम की भी कोई आवश्यकता नहीं है। जब साधक कपाल-भद्रिका के द्वारा प्राणों को खींच कर ब्रह्माण्ड की ओर ले जाता है तब धीरे-धीरे उसका निचला भाग शून्य होता जाता है यहाँ तक कि उसकी हृदय (Heart) की गति भी रुक जाती है। नाड़ी (Pulse) चलना बन्द हो जाती है। उस समय उसकी चैतन्य-शक्ति मस्तिष्क में बैठ हो जाती है और वह बिलकुल ज्ञान शून्य हो जाता है। जड़ता, मूढ़ता और अज्ञानता के वश में पड़ कर उस समय न उसको अपना ज्ञान होता है और न ध्येय का। यह हठयोग की समाधि कहलाती है। शास्त्रों ने इसको जड़ समाधि व तामसी समाधि के नाम से पुकारा है। अज्ञानी मनुष्य चाहे इसको समाधि कहले। चाहे इसके करने वाले को वह महात्मा समझने लगे, यह दूसरी बात है, परन्तु वास्तव में यह 'समाधि' नहीं है। केवल कपाल भद्रिका का साधन है। हमारे यहाँ के कई अभ्यासी इस साधन को बड़ी सरलता से कर लेते हैं। हमारे यहाँ आने से पूर्व इस साधन को उन्होंने दूसरे साधुओं से सीखा था परन्तु आध्यात्मिक लाभ न होता देख उसको त्याग के अब आत्मिक-साधन में लग गये हैं।

महर्षि पातंजलि ने अष्टाङ्ग योग का वर्णन करते हुए केवल दो ही प्रकार की समाधि बतलाई है जिनके नाम १-सम्प्रज्ञात समाधि

और २-असम्प्रज्ञात समाधि हैं। वास्तव में यह योग-साधन की समाधियाँ हैं। और पिछली कपाल-भाति अथवा खेचरी-समाधि केवल बाजीगरी का खेल है। अध्यात्म-जगत में उसको कोई आदर की दृष्टि से नहीं देखता और न इससे कोई आध्यात्मिक लाभ होता है।

सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधियां

यह ऋषियों की समाधियाँ हैं। इनके करने के लिये मुद्रा इत्यादि किसी भी कठिन क्रिया की आवश्यकता नहीं है। यह स्वयं ही प्रत्येक अभ्यासी को धारणा और ध्यान के पश्चात आया करती हैं, चाहे वह कर्म योगी हो, उपासना व भक्ति योगी हो, अथवा ज्ञान-योगी हो।

समाधि वास्तव में ध्यान की उस गहरी अवस्था का नाम है कि जिसमें साधक बाह्यज्ञान शून्य हो जाता है। तात्पर्य्य यह है कि ध्यान करते-करते जब ऐसी अवस्था हो जाय कि जिसमें अपने शरीर का तथा बाहिरी पदार्थों का ज्ञान न रहे उसको "समाधि" कहते हैं। इसीका नाम योग है।

जाग्रत-समाधि

ध्यान के पश्चात् जब साधक इस अवस्था को पहुँचता है तब समाधि की प्रथमावस्था का आरम्भ होता है इसमें ध्यान करने वाला अपने को भूल जाता है, बाहिरी ज्ञान भी उसको नहीं रहता परन्तु ध्येय व लक्ष्य उसके सन्मुख रहता है। हाँ!

कभी-कभी थोड़ी देर के लिये वह अन्तर्धान भी हो जाता है, परन्तु फिर सन्मुख आजाता है। इसको "जाग्रत-समाधि" कहते हैं। यहाँ से समाधि का आरम्भ होता है। हम इसको और भी साफ किये देते हैं। जैसे कोई मनुष्य प्रकाश व ज्योति का ध्यान करता है अथवा किसी साकार रूप पर उसने धारणा कर ली है तो अभ्यास बढ़ते-बढ़ते कुछ दिन पीछे उसको ऐसी अवस्था आयेगी कि ध्यान में बैठते ही वह अपने को भूल कर केवल प्रकाश व ज्योति में लय होने लगेगा। साकार उपासक अपने इष्ट को अनुभव करेगा और शब्दयोगी अन्तर के शब्द सुनने लगेगा। यह योग की पहिली अवस्था (Stage) है। यहाँ से परा-विद्या की वर्णमाला शुरू होती है। इसमें ध्येय के ऊपर मन स्थिर हो जाता है और सिवाय ध्येय के और कोई वस्तु ध्यान में शेष नहीं रहती। ध्यान करने वाले (ध्याता) का और ध्यान का इस अवस्था में अभ्यासी को पता नहीं रहता। केवल जिस वस्तु पर ध्यान जमाया था वही शेष रह जाती है। वृत्तियों के सिमट जाने और ध्येय पर रुक जाने से साधक को एक अपूर्व आनन्द अनुभव होता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं धीरे-धीरे किसी आनन्द-दायक वस्तु की ओर खिंच रहा हूँ। क्यों खिंच रहा हूँ ? कौन खींच रहा है ? इसका कारण उसकी समझ में कुछ नहीं आता। वह चाहता है कि इसी तरह मैं बैठा रहूँ और इस अमृत रस को पान करता रहूँ। यदि कोई उस समय उसको छेड़ता है अथवा किसी प्रकार का वहाँ पर आहट (शब्द) हो

जाता है तो उसकी चोट वज्र के समान उसके हृदय में लगती है। वह किसी तरह भी उस शान्ति-मयी अवस्था को नहीं त्यागना चाहता। आवरण आजाने पर व्याकुल हो उठता है। यह "सगुण उपासना" कहलाती है। साकार वादियों का यही "भक्ति-योग" है। इस अवस्था में द्वैत-भाव रहता है। ध्याता (ध्यान करने वाला) और ध्येय (जिस पर ध्यान जमाया है) का ज्ञान रहना ही "द्वैत-भाव" कहलाता है और ध्यान ठहराने के लिये प्रभू का कोई रूप मान लेना चाहे वह स्थूल रूप हो और चाहे ज्योति व शब्द हो "साकार व सगुण" उपासना कहलाती है।

उपासना या भक्ति हमेशा दो से ही आरम्भ होती है और अन्त में एक में जाकर समाप्त होती है। उस समय उसको उपासना न कह कर "अद्वैत-योग" या "ज्ञान-योग" कहा जाता है। द्वैत भाव के समाप्त होते ही उपास्य और उपासक के मिलते ही उपासना की अवस्था जाती रहती है और ज्ञान-योग का आरम्भ हो जाता है। एक पश्चिमी फिलासफर इसके लिये लिखता है:—

Not one but two is the beginning;
Not two but one is the end.

हम इसकी विशेष व्याख्या आगे चल कर भक्ति-योग के साथ २ करेंगे परन्तु आप के समझने के लिये यहाँ पर इतना और बतलाये देते हैं कि उपासना में भगवान का स्वरूप अपने मन

में फर्ज़ कर लेना वा गढ़ लेना पड़ता है और ज्ञान में वह प्रत्यक्ष अनुभव होता है। यह उपासना और ज्ञान का भेद है जिसको लोग कम समझते हैं परन्तु अद्वैत-पद अभी इससे बहुत आगे है और इस अद्वैत के आगे भी बहुत सी अवस्थायें और शेष रह जाती हैं कि जिनका वर्णन करना यहाँ पर हम व्यर्थ समझते हैं।

स्वप्न योग।

जाग्रति-समाधि का वर्णन हमने ऊपर किया है इसमें समाधि होती है परन्तु लक्ष्य सन्मुख रहता है यह उपासना की प्रथम अवस्था है इससे साधक जब आगे बढ़ जाता है तो उपासना की द्वितीयावस्था का प्रारम्भ होता है सन्तों की भाषा में यह "स्वप्न-योग" कहा जाता है।

जैसे सोया हुआ मनुष्य अचेत अवस्था में पड़ा पड़ा स्वप्न देखा करता है उसी प्रकार इस समाधि में अभ्यासी सिनेमा के फिल्मों की तरह अपने अन्तर में अनेक प्रकार के दृश्य देखने लगता है। विचार आते हैं और जाते हैं। विचारों की लड़ी बँध जाती है। साधन करने के लिये आसन पर बैठ कर जहाँ आँखें बन्द कीं-त्योंही चेतना जाती रही और ख्यालात आने शुरू हो गये। अब न अपना होश है और न बाहिरी ज्ञान है, और न वह मनमोहिनी प्यारी मूर्ति सन्मुख है कि जिसके दर्शन से अब तक अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ करता था।

ध्येय और आनन्द के लुप्त हो जाने के कारण साधक इस अवस्था में पहुँचते ही घबड़ा उठता है। वह समझने लगता है कि मैं पतित हो गया। वह हठ से उन विचारों के रोकने का उद्योग करता है परन्तु जितना वह रोकना चाहता है उतने ही प्रबल वेग से और भी आक्रमण होने लगता है यहाँ तक कि वह हताश हो कर साधन छोड़ बैठता है।

उसने अनेक को त्याग कर एक पर वृत्ति ठहरानी चाही थी उसमें कुछ सफलीभूत होता हुआ भी अपने को पाया था परन्तु अब तो अनेकानेक के चक्कर में पड़ गया। यह क्या हुआ? इससे कैसे छुटकारा मिले? यह पिशाचिनी माया का वेग है, यह शैतान का धक्का है। मैं गुरु-कृपा से अथवा अपने परिश्रम से कुछ ऊँचा उठ पाया था आज मेरी आशाओं पर पानी फिर गया, प्रकृति ने मुझे नीचे गिरा दिया, यह मुझे पार नहीं जाने देगी? मैंने सुना था कि जब कोई मनुष्य साधन और अभ्यास के द्वारा ब्रह्म या आत्मा की ओर जाना चाहता है तो माया को बुरा लगता है और वह उसको अनेक विघ्नों द्वारा उस ओर जाने से रोकती है। यही अवस्था आज मेरी लिए आ गई है। यह माया के विघ्न हैं, यह मन के धोके हैं। अब मैं किसी प्रकार सफलीभूत नहीं हो सकूँगा। मैं निश्चय ही

ओह ! मैं विचारों को जितना २ रोकना चाहता हूँ उतने ही और अधिक विचार मेरे सन्मुख आने लगते हैं। मैं संकल्प-विकल्पों को जैसे ही मिटाने का उद्योग करता हूँ वैसे ही वह शत्रुओं की सेना की भाँति एक दम आकर मेरे ऊपर टूट पड़ते हैं और मेरे हृदय रूपी दुर्ग को चारों ओर से घेर लेते हैं। इनसे कैसे छुटकारा मिले ? कोई बात समझ में नहीं आती। मैं सारे ही उपाय कर चुका, सारी शक्ति अपनी लगा चुका एक सैकिण्ड को भी तो चैन नहीं मिलता। क्षण मात्र को भी तो प्यारी शान्ति देवी के दर्शन नहीं होते। मैं तो समझता था कि मेरे मन में एकाग्रता बढ़ती जा रही है, ज्योतिर्मयी अनोखी भगवान् की माधुरी छवि की थोड़ी थोड़ी झलक मुझको मिलने लगी है, आगे चलकर इसमें और भी उन्नति होगी परन्तु चाण्डालिनी-महाशक्ति ने मुझे गिरा दिया। यह दुष्टा अब नहीं मुझे पार जाने देगी, यह तो अपने ही में लपेटे रक्खेगी। कोई प्राणी इसके पंजे से छूट जाय, यह भला इसे कब अच्छा लगता होगा ? इसका मुकाबिला करना अति कठिन है। मैं तो हतारा होगया हूँ, मेरी सारी-आशाएँ मिट चुकी हैं। मुझे सफलता किसी प्रकार भी नहीं हो सकेगी, अब इस झंझट में वृथा अपना समय और शक्ति क्यों नष्ट करूँ ? मेरी बुद्धि तो यही कह रही है कि "खाओ, पियो, और चैन करो" कहाँ का झगड़ा पाला है। छोड़ो इस सब खट-पट को किसी ने सच कहा है कि :—

आक़बत की खबर खुदा जाने ।
अब तो आराम से गुजरती है ॥

इस प्रकार निराशा देवी की गोद में शिर रक्खे हुए जिज्ञासु साधनों को छोड़ और प्रभू से विमुख हो संसार की ओर चला जाता है और अपने अमूल्य समय को वृथा नष्ट करता हुआ संसारी और नारकी बन जाता है।

अधिकतर तो यही होता है कि यहाँ पर पहुँच कर साधक अपने साधन को छोड़ बैठता है और यह ख्याल बाँधलेता है कि मैं गिर गया अब मुझसे नहीं हो सकेगा अति कठिन कार्य है। यह भी देखा गया है कि कोई २ सच्चे शूर वीर और सच्चे ईश्वर के प्रेमी इस अवस्था में पहुँच कर आत्म घात करने को तैयार हो जाते हैं। या पागल और मजजूब (अवधूत) बन जाते हैं। हाँ! समर्थ गुरू की समीपता और शरणागति पाया हुआ अभ्यासी अति शीघ्रता से इस स्थान से पार निकल जाता है।

शास्त्रों में ऐसा वर्णन कहीं पर आया है वा नहीं—यह तो हमको पता नहीं है। इस बात को तो विद्वान् पण्डित जन ही जानते होंगे। यह तो अनुभव है। और केवल हमारा ही नहीं वरन् उन सैकड़ों अभ्यासियों का भी है,जो हमसे इस समय अध्यात्म-शिक्षा पा रहे हैं अथवा जो महापुरुष हमसे पहिले गुजर चुके हैं और जिनसे वार्तालाप इस विषय पर हमारा हो चुका है।

ऐसा क्यों होता है ?

इस बात को लोग कम समझते हैं और इसी कारण धोखा खा जाते हैं। वास्तव में यह एक उच्चकोटि की अवस्था है बिना

इसको पार किए हुए मन शुद्ध और निर्मल नहीं बन सकता हाँ! इसमें मनोरञ्जन नहीं है यह एक दुखदायी अवस्था है। सुनो-हमारे अन्दर एक रिकार्ड रूम (Record Room) वा दफ्तर है जिसमें जन्मान्तर के संस्कार इकट्ठे भरे हुए हैं। जैसे किसी सन्दूक अथवा बस्ते में पत्रादि रक्खे हों, और तुमको एक सौ वर्ष पहले के कागज की तलाश हो तो तुम्हारे लिए केवल यही एक उपाय हो सकता है कि उस स्थान पर पहुँचकर उन पत्रों को पलटने लगो और अपनी अभीष्ट-वस्तु की खोज करने लगो। ऐसा करने के समय तुमको अच्छा नहीं लगेगा, परिश्रम भी करना पड़ेगा, सम्भव है धूल मिट्टी से चिकने चुपड़े बाल भी अट जांय। मुँह और नाक में भी खाक भर जाए और तुम वहाँ से घबड़ाकर भाग निकलो और इस कार्य को तिलाञ्जलि देकर अपने चैन का जीवन (जो कि वास्तव में चैन का नहीं परन्तु मूर्खतावश तुमने ऐसा समझ रक्खा है)। व्यतीत करने लगो, परन्तु ऐसा करने से क्या तुम्हारा कल्याण हो सकता है? जिस पुस्तक वा पत्र की तुमको आवश्यकता थी वह प्राप्त हो सकता है? यह शूरवीरता नहीं है, वरन कायरता है। तुम्हारा ऐसा करना इस बात की साक्षी दे रहा है कि तुम में उस वस्तु के लिए सच्चा प्रेम नहीं है। तुम सच्चे जिज्ञासु अभी नहीं हो और न अब तक तुमको उसके लाभ का ज्ञान हुआ है। यदि तुम समझते होते कि बिना उस कागज के हम किसी तरह अपने मुकदमे को नहीं जीत सकते वह तो हमको अदालत में पेश

करना ही होगा और हमारे लिए अनन्त लाभकारी है तो कभी शायद ऐसा नहीं करते और न परिश्रम से घबड़ाते।

श्री कबीर साहब ने कहा है :—

कबीर रन में आय के, पाछे रहै न सूर।
साईं के सन्मुख रहे, जूझै सदा हजूर ॥१॥
कबीर सोई सूरमा, मन से मांडे जूझ।
पाचों इन्द्री पकड़ के, दूर करें सब दूझ ॥२॥
खेत न छांडे सूरमा, जूझै दो दल मांहि।
आशा जीवन मरन की, मन में राखे नाहि ॥३॥
सूरे सीस उतारिया, छांडी तनकी आश।
आगे से गुरु हरखिया, आवत देखा दास ॥४॥
सूर चला संग्राम को, कबहुँ न देवै पीठ।
आगे चल पीछे फिरै, ता का मुख नहीं दीठ ॥५॥
आग आंच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निबाहन एक रस, महा कठिन व्यवहार ॥६॥
नेह निभाए ही बनै, सोचे बनै न आन।
तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजै जान ॥७॥

दृष्टान्त है कि—एक पश्चिमी फिलास्फर किसी नई वस्तु की खोज में लगा हुआ था। बहुत सा धन भी व्यय हुआ परन्तु उसको सफलता नहीं मिली। घबड़ा कर उसने अपने विचार बदल डाले और इस कार्य को छोड़ दिया। एक दिन वह घूमने के लिये मैदान में गया हुआ था, उसने देखा कि—एक चींटी वृक्ष

की चोटी पर पहुँचना चाहती है परन्तु उसकी पीठ चिकनी होने के कारण वह कुछ दूर से फेर फेर खिसक पड़ती है। यह दृश्य उसके जीवन के अनुसार था इसलिये उसको पसन्द आ गया। खड़ा हो गया। उसने देखा कि—कई घन्टे के परिश्रम से चींटी उस वृक्ष पर चढ़ ही गई। प्रकृति की इस घटना ने उसको फिर से साहस दे दिया और उसने अपने कार्य में सफलता प्राप्त की।

प्रेमियो! घबड़ाओ मत। उस अपनी प्राचीन संस्कार राशि को हिम्मत के साथ बाहर निकाल फेंको, उनको रोको मत। रोकने से उनका वेग और बढ़ेगा। उन्हें निकलने दो, वह हृदय के मल हैं। वह व्यर्थ वस्तुयें हैं। उनका निकल जाना ही अच्छा है। जब वह सब तुम्हारे मस्तिष्क से बाहर चली जायेंगी तब तुम अपने को शुद्ध और निर्मल बना सकोगे। उस समय तुम्हारा मन विकार रहित हो कर शान्त हो सकेगा। तुमने मन को बाहर से रोक कर अन्तर में प्रवेश किया है तुम उसको अनेक से हटा के एक पर लाना चाहते हो परन्तु उसके विहार के लिये अनेक चीजें भीतर ही मौजूद हैं वह अपने स्वभावानुकूल इन आन्तरीय वस्तुओं की टटोल में लग जाता है और तुम्हारी आज्ञा का पालन नहीं करता। अपने खिलाड़ी को जैसे बाहर जाने से तुम ने रोका है वैसे ही उसके खेलने के लिये अन्तर में भी कोई खिलौना मत छोड़ो, तब वह तुम्हारे वश में आवेगा और चुप चाप हो कर बैठेगा। जब तक तुम ऐसा न कर सकोगे तब तक उसको अधिकार में लाना दुर्लभ है।

संस्कार कैसे बनते हैं।

जिन वस्तुओं को हम देखते हैं, जिन शब्दों को सुनते हैं और जिनका वाणी से उच्चारण करते हैं, तथा त्वचा से अनुभव करते हैं वह हमारे अन्तर में प्रवेश हो कर पहिले एक बिन्दु बनाती है यह बिन्दु संस्कार का बीज कहलाता है जब दुबारा फिर उसका प्रयोग करते हैं तब वह बिन्दु फैल कर सूक्ष्म रेखा की शक्ल में आजाता है और तीसरी बार वही रेखा घनी और गहरी हो जाती है इसका ही नाम "संस्कार" है।

बिन्दु—संस्कार का "कारण शरीर" था, रेखा 'सूक्ष्म शरीर' और तृतीयअवस्था उसकी "स्थूल-शरीर" कहलाती है। आदि सृष्टि से जन्म जन्मान्तर के चक्करों में पड़ के हमने अपने भीतर ऐसी अनन्त (बेशुमार) रेखायें बना डाली हैं। यह सब संस्कारों की रेखायें हैं जोकि मस्तिष्क (दिमाग) में होती हैं। यही हिन्दुओं की लिलाट रेखायें हैं कि जिनको वच्च-माता वचा उत्पन्न होने के पश्चात् छटवें दिन रात्रि में आकर बनाया करती है इसीलिये उनमें एक संस्कार-छटी-के नाम से किया जाता है परन्तु शास्त्रों में कहीं भी इसका विधान नहीं है जो कुछ भी हो।

मन जब इन रेखाओं के समीप पहुंचता है तब यह रेखायें जाग्रत हो उठती हैं और अपने असली रूप को प्रकट कर मन के सन्मुख खड़ी हो जाती है फिर क्या था मन को अन्तर में भी एक नई सृष्टि मिल जाती है। और वह उसमें विहार करने लगता है। जब तक इन रेखाओं को मिटाया न जायगा, जब तक इन

संस्कारों के ढेर को बाहर न फेंका जायगा तब तक कार्य किसी प्रकार सिद्ध न हो सकेगा।

यह संस्कार ही हृदय के मल और आवरण हैं, इनके कारण ही योगियों को विक्षेप हो जाता है इसीलिये इनका मिटा देना अथवा उखाड़ कर बाहर फेंक देना ही उचित है। हमारे अन्दर प्रकाश है, हमारे अन्दर आनन्द है, और हमारे अन्दर सत्यता है, परन्तु यह हमारा सच्चिदानन्द संस्कार राशि के नीचे ऐसे दब गया है कि जैसे एक अमूल्य मणि मिट्टी व कूड़े करकट के ढेर के नीचे दब गई हो और उसका प्रकाश उसी के भीतर बन्द हो कर रह गया हो। यदि तुम्हें उस मणि की तलाश है तो उसके ऊपर से कूड़े के ढेर को हटाओ, उसके स्थान को साफ करो तब वह तुम्हें प्राप्त हो सकेगी। ज्यों ज्यों तुम मलों को दूर करते हुए उसके समीप पहुचते जाओगे त्यों २ ही उसके प्रकाश और आनन्द की झलक तुम को आती हुई दृष्टिगोचर होगी और जिस समय सम्पूर्ण मल साफ हो जायेंगे तब ही तुम पूर्ण योगी सिद्ध और महात्मा बन जाओगे। यही ईश्वर दर्शन है। यही साक्षी स्थिति है और यही सब कुछ है।

हठ योगी हठ के साधनों से इन आवरणों को दूर करते हैं, उपासना व भक्तियोगी भक्ति द्वारा अपने हृदय को शुद्ध व निर्मल बनाया करते हैं और ज्ञान योगी खाली विचार के पीछे पड़े हुए आयु नष्ट कर डालते हैं। इनमें से पूर्ण सफलता किसी को भी नहीं मिलती। यह हमारी बात सबको ही बुरी लगेगी

परन्तु है यथार्थ ऐसा ही है। सुनिये-हम उसका कारण भी खोले देते हैं। हठ योगी सिद्धियों के चक्कर मे पड कर अहंकारी वन जाते हैं और अपने को वडा समझने लगते है। और इसी कारण पतित हो जाते हैं। इस दरवार मे जो कोई अव तक गया है वह छोटा वन के ही पहुँचा पाया है वड़ों की गुजर वहां नहीं है।

वडा न जाने पाय है, साहव के दर्वार ।
द्वारे ही में लागि है, "सहजो" मोटी मार ॥

यह तो हठ योगी की वात रही, अव भक्तों की कथा भी सुनिये। वह अपने इष्ट देव की स्थूल मूर्ति पर ऐसे अड़ जाते हैं कि आगे को चलना ही नहीं चाहते; और सारा जीवन इसी मे विता देते हैं यह इनकी भूल है। इनकी दृष्टि पृथ्वी-तत्व मे हटकर दूसरे सूक्ष्म तत्वों की ओर जाती ही नहीं और अन्नमय और प्राणमय कोष में ही रह जाते हैं। इसी प्रकार आज कल के ज्ञानी ख्याली गपोड़े लड़ाया करते हैं अभी उस अवस्था को तो पहुँचे नहीं और वात वहां की करने लगे। संसार के कल्पित होने का ख्याल श्रवण, मनन, और निध्यासन द्वारा वाँधने लगे। भ्रम को दूर करना चाहते थे परन्तु और भी भ्रम में पड़ गये। हम इस विषय पर आगे चलकर जव ज्ञानयोग की व्याख्या करेंगे तव विस्तार से लिखेंगे।

सफलता

इस मार्ग में सफलता केवल उसी साधक को प्राप्त हो सकी है कि जो १-कर्म, २-उपासना और ३-ज्ञान तीनों प्रकार

के साधनों की मिलौनी (Mixture) कर लेता है। यह अलग २ नहीं है वरन् एक ही शरीर के तीन अंग हैं। कर्म पाँव उपासना-उदर और ज्ञान मस्तिष्क है। इनमें से यदि किसी भाग को काट डालो तो यह शरीर सुन्दर और पूर्ण नहीं हो सकता। इसी प्रकार इनको समझो। गीता में भगवान् कहते हैं—

तेषां ज्ञानीनित्ययुक्त, एक भक्तिर्विशिष्यते।
प्रियोहि ज्ञानिनोऽत्यर्थं, अहं स च मम प्रिय॥

अर्जुन! ज्ञान के साथ जो मेरी भक्ति करता है वह मुझे प्यारा लगता है। अब समझिये, कि जब ज्ञान के संग भक्ति होगी तो भक्ति के संग कर्म अवश्य होगा। भक्ति करने के लिये कुछ न कुछ हाथ,पाव अवश्य ही चलाने पड़ेंगे इन्हीं का नाम "कर्म" है। इस प्रकार कर्म से उपासना और उपासना से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति मिला करती है। इस बात को और भी समझ लेना उचित है। जो कार्य बाहिरी इन्द्रियों द्वारा शरीर से किया जाता है उसको 'कर्म" कहते हैं चाहे वह आसन हो, चाहे जप, दान, वा यज्ञ हो अथवा पचग्नि तपना और सूर्य के सम्मुख खड़े रहना इत्यादि हो। यह सब कर्म थोथे भी हैं। उपासना के लिये हमको किन २ कर्मों की आवश्यकता है इसको पूर्ण रूप से जान लेना उचित है। गीता और उपनिषदों ने इस रहस्य को साफ २ समझा दिया है परन्तु अज्ञानी गीता पाठ करते हुये भी व्यर्थ कर्मों में फस कर जीवन नष्ट कर डालते हैं।

कर्म करते हुये भावापन्न होकर प्रभू को अपने सन्मुख ला बिठाना "उपासना" और उपासना करते २ उसके रूप को अनुभव द्वारा देख लेना "ध्यान" कहलाता है। यह अलग २ नहीं हैं जैसा कि सम्प्रदाई लोग समझ रहे हैं, तीनों एक ही हैं।

उपरोक्त वर्णन से केवल इतनी बात हमको बतानी थी कि आत्म दर्शन के लिये और ईश्वरीय साक्षात्कार के लिये मल, विक्षेप और आवरण दूर करना अति आवश्यक है। आवरणों के दूर हो जाने पर और मलों के नष्ट होजाने पर हमारा हृदय शुद्ध और निर्मल बन जाता है। मन, बुद्धि और चित्त में स्थिरता आ जाती है। उसको विक्षेपता नहीं सताती क्योंकि संस्कार समूह अब नष्ट प्रायः हो चुके हैं। यह संस्कार ही धक्का दे देकर बारम्बार हमको चलायमान कर दिया करते हैं और अपने अभीष्ट से दूर फेंक देते हैं।

शुद्ध और निर्मल अन्तःकरण में ही उसका दर्शन होता है। यह सब ही जानते हैं फिर सफाई के समय घबड़ा जाना और साहस तोड़ देना कौन सी बुद्धिमानी का काम है। हिम्मत रक्खो इन मलों को शीघ्रता से धो डालो। आवरणों को फाड़ डालो। यदि कोई संस्कार तुमको मोहित करना चाहे तो उसकी ओर ध्यान न देकर आगे बढ़े चलो। अटकना बुरा होता है। इसमें समय नष्ट होता है और काम देर में बनता है। उनको रोको मत। चले आने दो। कीचड़ अन्दर भरी हुई है इसको साफ होजाने दो, यदि रोकोगे तो अन्दर ही रह जायगी और तुम्हारे ही लिये

हानिकारक होगा। इसका निष्फल जाना ही तुम्हारे लिये लाभकारी होगा ऐसा निश्चय करलो, जिस समय तुमको ऐसा विश्वास हो जायगा कि यह अवस्था हमारे लिये अत्यन्त लाभदायक है उसी समय तुम्हारी घबड़ाहट जाती रहेगी और तुम शीघ्रता से बल पूर्वक अपने प्रयत्न में लग जाओगे।

एक बङ्गाली महात्मा इस अवस्था के साधकों को एक बड़ी उत्तम युक्ति बताया करते थे, वह कहा करते थे कि—हमारी मा अनेक रूपिणी है वह क्षण २ में अपना रूप बदलती है। हमने उसके जिस रूप का ध्यान किया था, अब आज वह रूप उसका नहीं रहा, उसने पहला रूप बदल दिया है ऐसा निश्चय कर लो कि यह सब उस मा के ही रूप हैं। हमारी मा प्रत्येक विचार के परदे में छिपी हुई हमको अपना दर्शन दे रही है, पहिले उसने एक रूप से दर्शन दिया था आज वह अनेक रूप से हमारे सन्मुख है। ऐसा करने से तुम अपने लक्ष्य से नहीं हटोगे और यह सङ्कल्प,विकल्प तुम्हारे शीघ्र ही शान्त हो जायेंगे।

सुषुप्ति योग

यह समाधि की तृतीयावस्था है, इसका नाम "सुषुप्ति-योग" है। प्रथम अवस्था में योगी अन्नमय-आत्मा के दर्शन करता हुआ और आनन्द लूटता हुआ अन्नमय कोष को पार करता है। द्वितीयावस्था में मन-प्राण के साथ युद्ध करता हुआ प्राण लोक व प्राणमय कोष को ते करता है और तृतीयावस्था में अपने

स्वःस्थान मनोमय कोष में बैठ कर विश्राम लेता है। अब इन दिनों उसके पास कोई काम नहीं है। स्वप्नयोग की उथल-पुथलभी उसकी जाती रही है। किसी प्रकार के विचार तथा कोई भी दृश्य उसके सम्मुख नहीं हैं। गहरी नींद में सो जाने पर जैसी दशा एक साधारण मनुष्य की हुआ करती है उसी प्रकार इस समाधि में योगी की हो जाया करती है। ध्यान करने को बैठा नहीं कि अचेत अवस्था में चला गया। ध्याता, ध्यान और ध्येय तथा ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटी उस समय मिट जाती है। मन संकल्प, विकल्प से, चित्त विचारों से और बुद्धि समझ-बूझ के कार्य्य से उस वक्त अपना हाथ खींच लेती है। केवल अहंकारी चैतन्य-आत्मा बैठी-बैठी अपने सूक्ष्म आनन्द का रसपान करती रहती है कि जिसका प्रत्यक्ष अनुभव उसके पीछे चेतना आने पर और मन व बुद्धि के कार्य्य करने पर योगी को हुआ करता है।

इस स्थान पर साधक को मनोमय-आत्मा का दर्शन होता है। शास्त्रों ने इसका 'संयम' नाम रक्खा है। यहाँ पहुँच कर योगी विभूति (सिद्धि) लाभ करता है। संयम की अवस्था प्राप्त कर लेना ही "सिद्धावस्था" कहलाती है। इसी संयम का दूसरा नाम 'ब्रह्मास्त्र' है कि जिसके द्वारा पूर्वकाल के क्षत्री कठिन संग्रामों को जीता करते थे। संयम वह शक्ति है कि जिसको हाथ में ले कर हम सभी कुछ कर सकते हैं। लोक लोकान्तरों में भ्रमण करना तथा तत्वों का ज्ञान प्राप्त करना इत्यादि अनेक प्रकार के

अद्भुत कार्य संयमी मनुष्य कर सकता है। अपूर्व शक्ति प्राप्त-ऐसी योगी अपनी आयु घटा, बढ़ा सकता है, पशु पक्षियों की भाषा पहिचान सकता है, देवगणों को अपनी आज्ञा में चला सकता है, पृथ्वीतल में छिपी हुई अनेक वस्तुओं को देख सकता है। अन्य मनुष्यों के हृदयों के गुप्त भेदों को बता सकता है इत्यादि कहाँ तक बतायें। महर्षि पतञ्जलि ने इसकी व्याख्या अपने योग दर्शन के विभूति-पाद में खूब कर दी है। परन्तु यह दूसरी बात है कि आचार्य लोग साधकों को इधर जाने से रोक देते हैं। जो इस ओर झुक गया वह पत्थर से मारा गया, वह लौट फिर के इसी संसार में चक्कर खाया करेगा। परमात्म दर्शन से वंचित रहेगा।

इस शक्ति के द्वारा ही हमको विज्ञानमय और आनन्दमय कोष की चोटी पर पहुँचना है। संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधि में जाना है यदि इसको यहीं समाप्त कर दिया तो यह कठिन मंजिल कैसे तै कर सकेंगे।

जो लोग सिद्धियों से व्यवहारी काम लेने लगते हैं उनकी आध्यात्मिक उन्नति रुक ही नहीं जाती वरन वह कुछ दिवस पर्यन्त फिर लौट कर वहीं आजाते हैं कि जहाँ से चले थे ऐसे लोग मान, बड़ाई तथा काञ्चन और कामिनी के बखेड़े में पड़कर पतित हो जाते हैं और फिर अपनी प्रतिष्ठा से भी हाथ धो बैठते हैं। ऐसे दृष्टान्त अनेकों हैं, हमारे सम्मुख भी कई घटनायें

[illegible] आई है, हमने भी कई सिद्ध-महात्माओं को बुरी तरह [illegible] देखा है।

[illegible] ग़लत्व की है अर्थार्थी मनुष्य अपने लाभ के लिये [illegible] की तरह चारों ओर से उस पर टूट पड़ते हैं। यह [illegible] समझता कि यह सब ठग हैं मेरा धन लूटने के लिये [illegible] बने हैं और मेरी आवभगति करते हैं। जिस दिन यह [illegible] की कमाई से मेरी जेब खाली कर लेंगे उसी दिन [illegible] साथ छोड़ बैठेंगे और मैं निर्धन और दरिद्री की तरह [illegible] दुःख उठाऊँगा और नारकी-योनियों को प्राप्त होऊँगा।

मान बड़ाई देख के, भक्ति करै संसार।
जब कुछ देखै हीनता, अवगुन धरै गँवार।

वास्तव में सिद्धियाँ योग-मार्ग में एक बड़ी रुकावट हैं। जिसने इनकी ओर ध्यान दिया, जो इनके प्रलोभन में आ गया वह मानो ईश्वर दर्शन से विमुख हो गया। श्रीपतञ्जलि कहते हैं "तेसमाधा वुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धय"।

निचकेता ने यमराज के समीप पहुँचकर यह प्रश्न किया था कि—हे यमराज ! मुझे आत्मा का रूप समझाइये। यमराज बोले—निचकेता ! तुझे संसार की जिस वस्तु की आवश्यकता हो [illegible] माँग। अष्ट-सिद्धि और नवनिद्धि मैं देने के लिये [illegible] हूँ, इन्द्र से अधिक सुख की सामिग्री, पूर्ण वैभव, सदा रहने वा[illegible] और न वृद्ध होने वाला शरीर, [illegible]

उनसे ही सहायता मांगता है, और अपना अहंकार त्याग उन्हीं के बल भरोसे पर चलना चाहता है तो वह दयालु और कृपालु प्रभु स्वय ही उसके मार्ग को साफ कर देते और उसको शीघ्र ही अपने समीप खींच लेते हैं। उस समय विश्व-जननी प्रकृति-माता भी हमारी सहायक बन जाती है और अपनी प्रेममयी गोद में उठाकर एकदम हमको वहाँ पहुँचा देती है। परन्तु यह कब होता है ? जब इन सारी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाएँ तब।

प्रेमियो ! यदि तुमको उसकी जिज्ञासा है, तुम उसको ही प्यार करते हो, और यदि तुमने अपना अभीष्ट उसको ही मान रक्खा है तो किसी दूसरी ओर आँख उठाके भी मत देखो किसी प्रलोभन में मत फँसो, और किसी विघ्न-बाधा की परवाह मत करो । प्रार्थना करो। सच्चे हृदय से एक बार यह शब्द अपने मुख से निकालो, कहो प्रभो ! मेरा मार्ग सुगम कर दो, मेरी परीक्षा मत लो, मैं इस योग्य नहीं हूँ, शीघ्र ही अपने समीप बुलाओ और अपना मनोहर दर्शन देकर कृतार्थ करो। ऐसा कहने मात्र से ही तुम देखोगे कि तुम्हारे सारे कार्य बनते हुये चले जा रहे हैं, और तुम्हारे विघ्न स्वयं ही शान्त हो रहे हैं।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी कितने प्यारे शब्दों में कह गये हैं।

नाथ जीव तव माया मोहू। सो निस्तरै तुम्हारे ही छोहू ॥१॥
तापर मैं रघुवीर दुहाई। जानौं नहिं कछु भजन उपाई ॥२॥
सेवकसुत,पितु,मातु,भरोसे। रहे असोच बनै प्रभु पोसे ॥३॥

यह श्री हनूमान जी के शब्द हैं जो कि सुग्रीव के सहायक व मन्त्री थे। सुग्रीव का राज्य व सुख सम्पति बालि ने छीन कर उस पर अपना अधिकार कर लिया था और सुग्रीव को देश निकाला दे दिया था। अनेक प्रयत्न से भी सुग्रीव बालि को नहीं मार सका, तब भगवान् की शरण गया, हनुमान जी ने इस कार्य में उसकी सहायता की और भगवान् को उसके स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया, अब सुग्रीव को कौन सी वस्तु नहीं प्राप्त हो सकती थी ? भगवान् ने बालि को मार गिराया और राज्य सुग्रीव को दिला दिया।

स्थूल में ऐसा हुआ हो परन्तु अध्यात्म में जीव ही सुग्रीव है। मन बालि है और सात्वकी वृति जीव की हनूमान है। जीव सतोगुणी वृति को संग लेकर जब भगवान् की शरण जाता है तब भक्तवत्सल प्रभू अपने निज स्वभावानुकूल शरणागति जीव के संकट निवारण करके उसे अनन्त सुख व आनन्द के धाम में पहुँचा देते हैं और मन को मार के उसका राज्य जीव को दिला देते हैं। बिना ईश्वर की सहायता के आज तक कोई भी मन को मार सका है ? यह मन ही तो हिन्दुओं का काल पुरुष और मुसलमान और इसाइयों का शैतान है । बाईबिल लिखती

हैं कि खुदा को सबने सिजदा किया मगर शैतान ने नहीं किया। भला शैतान क्यों करता, क्या वह खुदा से कुछ कम है? सारी दुनिया पर उसी का तो राज्य है। खुदा के बन्दे इने गिने और शैतान के बन्दे लातादाद। खुदा ने अपने लिये यह संसार बनाया था मगर शैतान ने छीन लिया, इसी शैतान को "मन" कहते हैं। इसका मार लेना तथा इस पर से अधिकार छीन लेना साधारण काम नहीं है। आश्रय लो। रुदन करो। बारम्बार कहो—दीनबन्धो! सब ओर से मुख मोड़ के मैं आपकी शरण आया हूँ, आप भक्तवत्सल हैं, आप पतित उद्धारक हैं, मेरे ऊपर दया कीजिये, मेरे अपराधों की ओर न देखिये मैं तो महा अधम हूँ जिस प्रकार हो सके मेरा उद्धार कीजिये इत्यादि। श्री कबीर साहब की वाणी है —

हँस हँस कंत न पाइयाँ, जिन पाया तिन रोय।
हँसा खुशी जो हरि मिलें, तो कौन दुहागिन होय॥

साधको! इन विभूतियों से बचो, हृदय में किसी प्रकार भी इनकी इच्छा मत उठने दो, यदि यह तुमको आके घेरने लगें तो उनकी ओर ध्यान न दो। जो "सिद्धियों को चाहता है उसे सिद्धियाँ मिलती हैं और जो उसको चाहता है उस वह प्राप्त होता है।" इन शब्दों को याद रक्खो। गीता में भगवान् कहते हैं।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

अर्थ—यह मेरी त्रिगुणात्मिका दैवी माया अगम और अपार है। जो मेरी शरण में आते हैं वे ही इसके पार पहुँच पाते हैं।

नवीन प्रबन्ध।

वर्तमान-युग के आचार्यों ने सिद्धियों से बचाने के लिये एक नई प्रथा चलाई है वह साधकों को इस बात का ज्ञान नहीं होने देते कि उनकी पहुँच कहाँ तक हो चुकी है, वह योग की किस अवस्था से गुजर रहे हैं, वह इस मार्ग में कुछ उन्नति कर सकेभी हैं या नहीं ? इस बात का बिलकुल भी पता उनको नहीं मिलता। वह हमेशा यह समझते रहते हैं कि अभी हमने कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाया। जो दशा हमारी आरम्भ काल में थी वही आज भी है। इस प्रकार आखों पर पट्टी बाँध के गुरू लोग अभ्यासियों को हाथ पकड़े खींचते हुए चन्द्रलोक के पार कर देते हैं। पश्चात् वहाँ से नीचे के स्थानों का ज्ञान करा देते हैं। जैसे किसी पर्वत की चोटी पर बैठा हुआ मनुष्य नीचे की सारी वस्तुओं को देख सकता है, उसी प्रकार इसको भी समझो। ब्रह्माण्ड के उच्च स्थानों से प्राणी नीचे की स्थानों की सैर कर सकता है, उसका सम्पूर्ण वृतान्त जान सकता है।

हमारे श्री गुरुदेव जी इसी शैली के अनुयायी थे और हम भी ऐसा ही करते हैं। इसका एक लाभ प्रत्यक्ष देखने में आया है कि साधक एक तो सिद्धियों के भँवर में नहीं पड़ता

और दूसरे उसको अहङ्कार नहीं उत्पन्न होने पाता। अहङ्कार त्यागने के लिये ही तो यह सारे उद्योग कर रहे थे, इसी अहंभाव के नाश करने के लिये योग मार्ग का आलम्बन किया था यदि यह और भी स्थूल होता गया तो कार्य कैसे सिद्ध हो सकेगा। अहङ्कार ही तो है जो हमको जुदा किये है। वाणी है—

जहाँ आपा तहाँ आपदा, जहाँ संशय तहाँ सोग।
कहै कबीर यह क्यों मिटैं, चारों दीरघ रोग॥
लेने को सतनाम है, देने को अन-दान।
तरने को है दीनता बूड़न को अभिमान॥

आत्म-उन्नति।

आत्म उन्नति दो प्रकार से की जाती है एक तो यह कि साधक सिढ़ी ब सिढ़ी नीचेसे चढ़ाई करता हुआ हरएक स्थान में ठहरता हुआ, धीरे-धीरे क्रमश सत्धाम और उससे आगे को जाता है और दूसरे यह कि गुरु की आकर्षण-शक्ति से एक दम खिंचता हुआ उन स्थानों में पहुँच जाता है कि जो बड़े बड़े योगियों को भी कई जन्मों में बड़ी कठिनाइयों से प्राप्त हो पाते हैं। इन दोनों तरीकों में इतना ही अन्तर है कि जितना एक बैलगाड़ी और मेल ट्रेन (डाक गाडी) में है। पहिला तरीका पैदल व बैल गाड़ी का है और दूसरा डाक गाड़ी और हवाई-जहाज का है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो स्वतन्त्रता और स्वाधीनता एक पैदल मुसाफिर को होती है वह रेल या मोटर इत्यादि में नहीं हो सकती। उसमें अपना तन मन और धन

जिन लोगों ने रास्ता पकड़ लिया है तुम उन्हीं को क्यों बुलाते हो, क्या संसार मे ऐसे मनुष्य नहीं है कि जिन्होंने अभी इधर चलने का इरादा भी न किया हो अथवा वह इधर का चलना कोई जरूरी न समझते हों। तुमको अगर अकेले चलना अच्छा नहीं मालूम देता और अपनी गाड़ी सवारियों से भरना ही चाहते हो तो अपने लिये इन लोगों में से तलाश करो। उनको वहाँ के लाभ बताओ। यदि तुम्हारी वाणी में प्रभाव है और यदि तुमने सच्चे दिल मे दूसरों के लिये उपकार-व्रत धारण कर लिया है तो तुम्हारे इशारे के साथ ही उनमें से इतने आजाएँगे कि जिनका ले चलना तुम्हारे लिये कठिन हो जायगा।

हम जिन जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति समाधियों का वर्णन ऊपर कर आये हैं यह मनोमय कोष की समाधियां हैं जो कि "राज योगी" साधकों को आया करती हैं। हठयोग की समाधि और प्रकार की होती हैं वह इससे निचली प्राणमय कोष की समाधियाँ कहलाती हैं। हठयोग का सम्बन्ध केवल प्राण, शरीर और प्राण मय-आत्मा तक रहता है, जब हठयोगी प्राणमय कोष को तै करके आगे बढ़ता है और मनोमय कोष में प्रवेश ने [illegible] हाँ से सूक्ष्म-साधन "राज योग" के आरम्भ हो [illegible] तात्पर्य यह है कि योग की निचली अवस्था [illegible] ऊँची अवस्था को "राजयोग" व

एक दूसरे के विरुद्ध वृथा बकवाद किया करते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि किसी रास्ते से कुछ समय अधिक लगेगा और बड़े कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और किसी मार्ग में सुगमता और सरलता से थोड़े ही काल में पहुँचना हो जायगा।

इसमें लड़ाई, झगड़े और द्वेष की कौन सी बात है। सब उधर ही जा रहे हैं ठोकरें खाते-खूते कभी न कभी पहुँच ही रहेंगे। यदि वह तुम्हारी ट्रेन में नहीं बैठना चाहता, यदि वह मुश्किल पसन्द है, तुम्हारी शीघ्रगामी आराम गाड़ी में बैठने के लिये तैयार नहीं होता, उसको पैदल चलना ही भाता है अथवा भाग्य से इक्का व बैलगाड़ी ही उसको मिल सकी है और उस पर सवार हो कर थोड़ा रास्ता तय कर गया है तो उसको अपनी ओर मत बुलाओ उसका समय नष्ट न करो उसे उसी पर चलने दो।

हाँ ! अगर वहाँ से घबड़ा के तुम्हारा आश्रय लेना चाहे तो उसको ठुकराओ भी मत। उसे सहायता दो। यदि सामर्थ्य रखने वाले हो तो उसका रास्ता भी उसके लिये सुगम बनाओ, उसके मार्ग के काँटे उठा डालो, ताकि बेचारा आसानी से पहुँच जाय, यदि-वह अपनी खुशी से उसके छोड़ने-पर ही उतारू हो रहा है। उससे उसे घृणा हो गई है तो अपनी ओर बुलाओ और गाड़ी पर बैठाल लो। यह परोपकार है।

तरवर, सरवर, संतजन, चौथे बरसे मेह।
के कारने, चारों धारें देह॥

जिन लोगों ने रास्ता पकड़ लिया है तुम उन्हीं को क्यों बुलाते हो, क्या संसार में ऐसे मनुष्य नहीं हैं कि जिन्होंने अभी इधर चलने का इरादा भी न किया हो अथवा यह इधर का चलना कोई जरूरी न समझते हों। तुमको अगर अकेले चलना अच्छा नहीं मालूम देता और अपनी गाड़ी सवारियों से भरना ही चाहते हो तो अपने लिये इन लोगों में से तलाश करो। उनको वहाँ के लाभ बताओ। यदि तुम्हारी वाणी में प्रभाव है और यदि तुमने सच्चे दिल से दूसरों के लिये उपकार-व्रत धारण कर लिया है तो तुम्हारे इशारे के साथ ही उनमें से इतने आजाएँगे कि जिनका ले चलना तुम्हारे लिये कठिन हो जायगा।

हम जिन जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति समाधियों का वर्णन ऊपर कर आये हैं यह मनोमय कोष की समाधियां हैं जो कि "राज योगी" साधकों को आया करती हैं। हठयोग की समाधि और प्रकार की होती हैं वह इससे निचली प्राणमय कोष की समाधियाँ कहलाती हैं। हठयोग का सम्बन्ध केवल प्राण, शरीर और प्राण मय-आत्मा तक रहता है, जब हठयोगी प्राणमय कोष को तै करके आगे बढ़ता है और मनोमय कोष में प्रवेश होने लगता है वहाँ से सूक्ष्म-साधन "राज योग" के आरम्भ हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य्य यह है कि योग की निचली अवस्था को "हठयोग" और ऊँची अवस्था को "राजयोग" व "राजविद्या" कहते हैं।

एक दूसरे के विरुद्ध वृथा बकवाद किया करते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि किसी रास्ते से कुछ समय अधिक लगेगा और कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और किसी मार्ग में सुगमता और सरलता से थोड़े ही काल में पहुँचना हो जायगा।

इसमें लड़ाई, झगड़े और द्वेष की कौन सी बात है। सब उधर ही जा रहे हैं ठोकरें खाते-खुते कभी न कभी पहुँच ही रहेंगे। यदि वह तुम्हारी ट्रेन में नहीं बैठना चाहता, यदि वह मुश्किल पसन्द है, तुम्हारी शीघ्रगामी आराम गाड़ी में बैठने के लिये तैयार नहीं होता, उसको पैदल चलना ही भाता है अथवा भाग्य से इक्का व बैलगाड़ी ही उसको मिल सकी है और उस पर सवार हो कर थोड़ा रास्ता तय कर गया है तो उसको अपनी ओर मत बुलाओ उसका समय नष्ट न करो उसे उसी पर चलने दो।

हाँ ! अगर वहाँ से घबड़ा के तुम्हारा आश्रय लेना चाहे तो उसको ठुकराओ भी मत। उसे सहायता दो। यदि सामर्थ्य रखने वाले हो तो उसका रास्ता भी उसके लिये सुगम बनाओ, उसके मार्ग के काँटे उठा डालो, ताकि बेचारा आसानी से पहुँच जाय, यदि-वह अपनी खुशी से उसके छोड़ने-पर ही उतारू हो रहा है। उससे उसे घृणा हो गई है तो अपनी ओर बुलाओ और गाड़ी पर बैठाल लो। यह परोपकार है।

तरवर, सरवर, संतजन, चौथे बरसे मेह।
परमारथ के कारने, चारों धारे देह॥

जिन लोगों ने रास्ता पकड़ लिया है तुम उन्हीं को क्यों बुलाते हो, क्या संसार में ऐसे मनुष्य नहीं है कि जिन्होंने अभी इधर चलने का इरादा भी न किया हो अथवा यह इधर का चलना कोई जरूरी न समझते हों। तुमको अगर अकेले चलना अच्छा नहीं मालूम देता और अपनी गाड़ी सवारियों से भरना ही चाहते हो तो अपने लिये इन लोगों में से तलाश करो। उनको यहाँ के लाभ बताओ। यदि तुम्हारी वाणी में प्रभाव है और यदि तुमने सच्चे दिल से दूसरों के लिये उपकार-व्रत धारण कर लिया है तो तुम्हारे इशारे के साथ ही उनमें से इतने आजाएँगे कि जिनका ले चलना तुम्हारे लिये कठिन हो जायगा।

हम जिन जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति समाधियों का वर्णन ऊपर कर आये हैं यह मनोमय कोष की समाधियां हैं जो कि "राज योगी" साधकों को आया करती हैं। हठयोग की समाधि और प्रकार की होती हैं यह इससे निचली प्राणमय कोष की समाधियाँ कहलाती हैं। हठयोग का सम्बन्ध केवल प्राण, शरीर और प्राण मय-आत्मा तक रहता है, जब हठयोगी प्राणमय कोष को तै करके आगे बढ़ता है और मनोमय कोष में प्रवेश होने लगता है वहाँ से सूक्ष्म-साधन "राज योग" के आरम्भ हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य्य यह है कि योग की निचली अवस्था को "हठयोग" और ऊँची अवस्था को "राजयोग" व "राजविद्या" कहते हैं।

योग दर्शन।

हमरी इन जाग्रत, स्वप्न और सुसुप्ति समाधियों का विवरण पातञ्जलि योग दर्शन में नहीं आया है। हाँ! उपनिषदें इसकी व्याख्या कर रही हैं कि जिसको हम आगे चल कर बतलायेंगे। महर्षि पातञ्जलि इससे भी ऊँचे जाते हैं। वह सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात नाम से समाधियों के दो भेद मानते हैं। यह समाधियां विज्ञानमय कोष की हैं। इनके अतिरिक्त एक और भी समाधि उन्हीं ने मानी है कि जिसका नाम "धर्ममेघ-समाधि" है, यह विज्ञानमय से भी ऊपर आनन्दमय कोष की अवस्था है।

सम्प्रज्ञात समाधि।

विज्ञानमय कोष की प्रथमावस्था "सम्प्रज्ञात-समाधि" कहलाती है और द्वितीयावस्था "असम्प्रज्ञात-समाधि" है। प्रज्ञा नाम बुद्धि का है जिस समाधि में बुद्धि काम करे उसको सम्प्रज्ञात और जिसमें हृदय की विवेक शक्ति और विचार शक्ति शून्य हो जाय उसको असम्प्रज्ञात कहते हैं। संत लोग इसी असम्प्रज्ञात को शून्य समाधि के नाम से पुकारते हैं, क्यों कि इस स्थान पर विचार और विवेक दोनों शून्य हो जाते हैं।

विचार-शक्ति चित्त में रहती है और विवेक-शक्ति बुद्धि में रहती है। इन दोनो इन्द्रियों चित्त और बुद्धि के रहने के

स्थान दिमाग (मस्तिष्क) में है। जब हम मनोमय कोष से आगे बढ़ जाते हैं तो 'मन' से पीछा छूट जाता है अब यहाँ पर चित्त को बुद्धि से काम पड़ता है। यहाँ पर यही दोनों आन्तरिक इन्द्रियां अपने दो दो रूप धारण करती हैं। प्रथमावस्था में वह पूर्ण शक्तिसे काम करने लगती हैं, और द्वितीयावस्था में थक-थका कर चुप हो बैठती हैं। यह सब सम्प्रज्ञात समाधि में होता है इसीलिये योग दर्शन ने इसके चार भेद कर दिये हैं।

सम्प्रज्ञात समाधि की प्रथम अवस्था सवितर्क, और द्वितीय निर्वितर्क, तृतीय सविचार और चतुर्थ निर्विचार कहलाती हैं। सम्प्रज्ञात समाधि में तर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता चारों विद्यमान रहते हैं जैसा कि योग दर्शन में लिखा है।

वितर्क विचारानन्दास्मिता रूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः।

अस्मिता से तात्पर्य्य शुद्ध अहङ्कार से है। मतलब यह है कि अन्तष्करण चतुष्टय में से केवल मन से ही पीछा छूटा है, अभी बुद्धि, चित्त और अहङ्कार मौजूद हैं, भेद केवल इतना है कि पहले यह सब स्थूल थे अब सूक्ष्म हो गये हैं। और इन तीनों के होने की वजह से साधक समाधि के आनन्द का भी अनुभव करता रहता है इसीलिये इसका नाम "सम्प्रज्ञात" है।

सवितर्क और निर्वितर्क

विज्ञानमय कोष से जो सरकिल (Circle) ब्रह्माण्ड का आरम्भ होता है उसको 'सूर्य्य मण्डल व सूर्य्य लोक' कहते हैं।

इससे नीचे के तीन कोष "मनोमय, प्राणमय और अन्नमय" "चन्द्रमण्डल व चन्द्रलोक" कहलाते हैं। यहाँ पर जो सूर्य्य और चन्द्रमा के नाम आये हैं इनसे आप यह अर्थ न समझें कि जो आकाश में सूर्य्य और चन्द्रमा दिखलाई देते हैं इनके लोक हैं बल्कि उपनिषदों ने यह नाम इसलिये रक्खे हैं कि यहाँ की स्थिति वाले पुरुषों में सूर्य और चन्द्रमा के से गुण आ जाते हैं।

सूर्य्यलोक और चन्द्रलोक।

यद्यपि यह सब बातें अनुभव से सम्बन्ध रखती हैं। खाली पढ़लेने व सुन लेने से इनका बोध होना असम्भव है इसलिये आपके मनोरंजन के लिये यहाँ पर थोड़ा सा अनुभवी वृतान्त भी आपको सुनाये देते हैं सुनिये—

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पाँच सरकिलों में बंटा हुआ है इनको ही वैदिक भाषा में कोष कहते हैं। नीचे के तीन "चन्द्रलोक," चौथे विज्ञनमय कोष को "सूर्य्यलोक" और पाँचवे आनन्दमय कोष को "ब्रह्मलोक" कहते हैं। जब तक प्राणी की स्थिति (चाहे इस स्थूल शरीर में रह कर अथवा इसको त्यागने के पश्चात् सूक्ष्म शरीर से) मनोमय कोष तक रहती है तब तक उसकी दृष्टि तथा उसका ज्ञान परिमित रहता है। चन्द्रमा जिस प्रकार अपने प्रकाश से ही प्रकाशित न हो कर सूर्य्य से प्रकाश लेता है इसी प्रकार चन्द्रलोक के प्राणी ब्रह्माण्डीय वस्तुओं तथा ब्रह्माण्डीय लोकों का ज्ञान अपनी निजी अनुभव से न जान सकने के

कारण दूसरे महापुरुषों के ज्ञान के आश्रय रहते हैं और पढ़ी बातों के आधार पर गुजरा करते हैं। इनके हथियार केवल प्रमाण और अनुमान हैं। प्रत्यक्ष अभी इनको नहीं हुआ इसीलिये ब्रह्माण्ड के उस भाग का जहाँ तक निजी ज्ञान नहीं होता, जहाँ तक प्रकृति और प्रकृति के कार्य तथा आत्म ज्ञान प्राप्ति के लिये दिव्य नेत्र नहीं, उसे " चन्द्र लोक " कहा जाता है क्योंकि यहाँ का निवासी दूसरे से प्रकाश (ज्ञान) लेता और उसी के द्वारा अपने को प्रकाशित करता है।

सूर्य मन्डल !

जब प्रमाण और अनुमान से आगे बढ़ कर अन्तरीय-दृष्टि द्वारा प्रत्येक तत्त्व तथा प्रत्येक लोक का असली रूप तथा उसके कार्य समझ में आने लगते हैं उसी का नाम "सूर्य लोक" या " विज्ञान-मय कोष " है।

यहाँ पहुँच कर दुर्वासनायें और आसुरी वृत्तियाँ क्षीण होजाती हैं। साधन समाप्त हो जाते हैं। अब साधक तर्क और विवेक रूपी फरसे को हाथ में लेकर अपनी अविद्या ग्रन्थि के छेदन करने में जुट पड़ता है। मनोनिग्रह तथा एकाग्रता द्वारा जो शक्तियाँ तथा बल उसको प्राप्त हुआ है उसके द्वारा वह लोकान्तरों में अपने को सूक्ष्म शरीर से पहुँचाता तथा वहाँ का पूर्ण वृतांत जानने का उद्योग करने लगता है। इस स्थान का योगी चलते फिरते उठते-बैठते खुली आँखों "संयम" करना

रहता है। जिस ओर वह अपनी दृष्टि फेरेगा तथा जिधर उसका ख्याल झुकेगा वहाँ का सच्चा और पूरा नक़शा उसके सम्मुख आजायेगा। कभी तत्त्वों के रङ्ग व रूप दिखलाई देते हैं तो कभी प्रकृति व माया अपना कार्य्य करती हुई प्रत्यक्ष अनुभव होती है। कभी सूर्य्यलोक, कभी इन्द्रलोक, कभी विष्णु लोक कभी शिवलोक दिखाई देंगे कभी स्वर्ग भूमि में पहुँच रहे हैं तो कहीं नारकीय प्राणियों की दुर्गतियों को देख रहे हैं, इत्यादि। इसी प्रकार सत्तलोक व चौदह भुवन का सम्पूर्ण तथा यथार्थ ज्ञान उसको हो जाता है जिस अवस्था में यह ज्ञान होता है उसको "सम्प्रज्ञात समाधि" कहते हैं। इसी का नाम ज्ञान मार्ग है। यहाँ पर पहुँचे हुए प्राणी की चौबीसों घन्टे बराबर संयमी अवस्था रहती है। उसको किसी विशेष स्थान पर बैठ कर विशेष रूप से आसन, प्राणायाम इत्यादि नहीं करना होता उसकी विवेक शक्ति हर समय ही अपना कार्य्य करती रहती है।

आजकल पुस्तकों के पन्नों में से दूसरों की उगाल को चाट के ज्ञान कथन करने वाले आपको बहुत मिलें, परन्तु अनुभवी पुरुष संसार में विरले ही दिखाई देंगे। तुम ऐसे मिथ्या ज्ञानियों और झूँठे अभिमानियों की बातें मत सुनो अपने साधन में लगे रहो। वह दिन दूर नहीं है कि जब यह अवस्था गुरु व ईश्वर की दया से तुम्हें भी प्राप्त हो जावे।

जिस प्रकार जगत गुरु भगवान् कृष्ण ने अपने [illegible] अर्जुन को विराट दर्शन कराया था उसी प्रकार [illegible]

अपने प्रत्येक सत्यनेष्ठी शिष्य को अवश्य ही यह विश्व रूप ज्ञान करता है।

हाँ! यह दूसरी बात है कि किसी को थोड़ा किसी को बहुत जैसी जिसकी योग्यता हो अथवा जैसी जिसकी सामर्थ्य हो। बिना इस प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञान हुए निश्चयात्मिका-बुद्धि प्राप्त ही नहीं हो सकती। और बिना निश्चय हुए संशय नहीं मिट सकता और जब तक संशय तब तक शान्ति और मुक्ति कैसी? इसीलिये इस मार्ग के लिये यहाँ पर पहुँचना तथा इन अवस्थाओं से गुजरना लाजिमी है। क्यों कि आगे जाने वाली सड़क यहीं हो कर गई है।

असम्प्रज्ञात समाधि

ब्रह्माण्डीय वस्तुओं के देखते-देखते जब बुद्धि भी थकित हो जाती है, विचार और विवेक की शक्तियाँ भी जहाँ पर अपना कार्य्य छोड़ बैठती हैं, जिस स्थान पर पहुँच कर यह इस अगम संसार के कार्यों को कुछ निर्णय नहीं कर सकता आश्चर्य में डूबे हुए मनुष्य की तरह भौंचक्का व स्तब्ध सा रह जाता है उस समय साधक "नेति-नेति" शब्द उच्चारण करता हुआ "असम्प्रज्ञात समाधि" में प्रवेश होता है यह कारण तमोगुण का स्थान है। यही "शिव लोक" है सन्त लोग इसी को 'शून्य और महाशून्य' कहते हैं। मुसलमान सूफी इसको "मुकाम-हैरत" कहते हैं। यही सुमेरु पर्वत (रीढ़ की हड्डी) की 'कैलाश' है। वेदान्ती यहाँ पर पहुँच कर अत्यन्त

अनिर्वचनीय कह कर चुप हो जाते हैं। शैव और शाक्त मतानुयाई अपने इष्ट को पा सन्तुष्ट हो बैठते हैं।

ज्ञान की धार फूट कर यहाँ से ही निकली थी और यहाँ आकर ही लय हो गई। सत और रज सम्प्रज्ञात समाधि में छूट चुके थे यहाँ आकर तमोगुण का भी अन्त हो गया और आगे चल कर वह गुणातीत अवस्था को प्राप्त होगा कि जिसका वर्णन आगे आयेगा।

यह विज्ञानमय कोष की उस अवस्था का विवरण है जो योगियों और साधकों को आया करती है। सन्तों की भाषा में इसीको त्रकुटी व त्रकूट पर्वत कहते हैं।

यह ब्रह्म की कारण अवस्था का वृतान्त है इससे आगे महाकारण के स्थान हैं यदि सम्भव हुआ और गुरु ने सहायता की तो भविष्य में उसको वतलाने का भी उद्योग करेंगे।

उपनिषदें।

वर्तमान समय में जितनी भी पुस्तकें संसार में प्रचलित हैं चाहे वह किसी धर्म व किसी सम्प्रदाय की हो क्यों न हों उनमें सबसे श्रेष्ठ उपनिषदें मानी जाती हैं। पश्चिमी फिलासफर "मैक्समूलर और शौपनहर" इत्यादि भी इस बात को मान रहे हैं। उपनिषद एक वैदिक भाषा का शब्द है जिसके अर्थ ज्ञान व जानने के हैं। उपनिषद वह ग्रन्थ हैं कि जिनमें प्राचीन महर्षियों ने अपने अनुभव लिखे हैं। गूढ़ रहस्यों के बतलाने में जितने यह ग्रन्थ गहरे गये हैं उतनी कोई भी धर्म पुस्तक नहीं गई। जहाँ

नक कहने, सुनने और लिखने का विषय हो सकता है, जहाँ तक मनुष्य अपने अनुभवी ज्ञान को कथन कर सकता है उसको उपनिषदों ने बताने का उद्योग किया है। परन्तु शोक है इस बात का कि आज-कल के विद्वान व्याकरण से उनको समझने की कोशिश करते हैं। मेरी समझ मे तो उपनिषदों पर वर्तमान युग में जितने भी टीका किये गये हैं वह उस उपनिषदकार के भावों पर कालिमा फेर रहे हैं।

एक ओर वेदान्ती पण्डित उपनिषदों मे वेदान्त का दर्शन करा रहे हैं तो दूसरी ओर आर्य्य समाजी टीकाकार उनके खन्डन में चुपटे हुये हैं और तोड़ मरोड़ के भोली भाली जनता को एक नवीन अर्थ बता रहे हैं। वैष्णव-सम्प्रदायी एक ओर अपनी अलग ही तान अलाप रहे हैं भला बताइये फैसला कैसे हो।

"कल्याण" के वर्क स्याह करने वाले हमारे श्री भोले बाबा जी मे कुछ आशा इस प्रकार की हुई थी परन्तु वह भी उथले ही रहे, उपनिषदकार के भावों को पूर्ण रीति से भाषा में नहीं प्रगट कर सके, यदि हमारे पूज्य बाबा जी इसमें थोड़ा सा अपना निजी अनुभव भी शामिल कर सकते तो बड़ा उपकार होता।

उपनिषदों की टीका करने के लिये तथा उसके यथार्थ भावों के समझने के लिये शुष्क पण्डिताई काम नहीं दे सकती। ऋषियों के अनुभवी ग्रन्थ अनुभव से ही समझ में आ सकते हैं विद्वानों को उचित था कि प्रथम साधन और अभ्यास के द्वारा निजी

अनुभव प्राप्त करते फिर ऐसे सद्ग्रन्थों की टीका में लेखनी उठाते, ऐसा करने से संसार को बहुत लाभ हो सकता था।

परन्तु शोक है इस बात का कि पण्डितों की रुचि इधर रही ही नहीं, वह व्याकरणाचार्य्य की डिगरी प्राप्त होते ही संन्तुष्ट हो बैठते हैं, पुस्तकीय ज्ञान को ही उन्होंने ज्ञान मान रक्खा है और वेद भाषा के शब्दार्थ का बोध होते ही अपने को महाज्ञानी जानने लगते हैं।

हिन्दू जाति के पतित होने का कारण केवल यही है। यदि आज ब्राह्मण मण्डली प्राचीन काल के सदृश शक्ति संपन्न और ब्रह्मवादिनी होती तो देश इस अवस्था को कभी प्राप्त नहीं हो सकता था।

यह तो थी हमारी पण्डितों के प्रति अपील। अब आगे अपने उसी विषय की ओर आते हैं। हम पीछे बतला आये हैं कि मनोमय कोष की जाग्रति, स्वप्न और सुषुप्ति समाधियों का वर्णन उपनिषदों में आया है अब आगे उसी को लिखते हैं—

दस उपनिषदों में से एक उपनिषद् है-"माण्डूक"। यह बतलाती है कि सम्पूर्ण ब्रह्म चार पादों (भागों) में बँटा हुआ है। उस ब्रह्म का नाम 'ओ३म्' है। ब्रह्म का प्रथम पाद 'अ' कहा जाता है, द्वितीय पाद को 'उ' कहते हैं, और तृतीय पाद का नाम 'म' है। यहाँ तक ब्रह्म की सगुण तथा मूर्तिमान अवस्था है। जिस वस्तु का नाम होता है उसका रूप अवश्य होता है और जिसका रूप होता है उसका नाम होना आवश्यकीय है।

प्रत्येक रूप तीन गुणों (सत, रज और तम) के मिलाप से बनता है, उस रूप की तीन अवस्थायें होती हैं, उत्पत्ति होती है, कुछ ठहरता है फिर विनाश को प्राप्त हो जाता है। जगत मे, जैसे यह अवस्थायें प्रत्येक रूप तथा प्रत्येक वस्तु को आया करती हैं वैसे ही ब्रह्म को भी आती हैं। ब्रह्म उत्पन्न होता है, नियत समय तक ठहरता है, फिर अपने भण्डार में लय हो जाता है, यह स्थूल ब्रह्म की तीन अवस्थायें हैं :—

इन तीन अवस्थाओं को ही उपनिषदों ने तीन पाद बता कर उसका "ओ३म्" नाम रक्खा है। ब्रह्म की इन अवस्थाओं में तीन गुण वर्तमान रह कर अपना २ कार्य्य करते रहते हैं इसीलिये इसको "सगुण" कहते हैं।

इन तीनों के ऊपर एक और गुणतीत या निर्गुण अवस्था आती है जिसमे यह गुण भी अपना कार्य्य त्याग के जहाँ से निकले थे उसी में समा जाते हैं उस समय न संसार की स्थिति रहती है और न कोई कार्य्य होता है। इस समय को "महा प्रलयकाल" कहते हैं यह ब्रह्म का चतुर्थ पाद या चतुर्थावस्था है।

यह चतुर्थावस्था दो भागों में बांटी गई है। पहले पहल कुछ काल तक ब्रह्म का अस्तित्व अति सूक्ष्म अनुभव में आता है फिर इतना लापता हो जाता है कि स्वयं ब्रह्म को भी उसका पता नहीं रहता, यह पाँचवी अवस्था है।

"ओ३म्" में जो अर्द्धमात्रा (‿) नीचे लगी हुई है यही ब्रह्म की चतुर्थावस्था का नाम हुआ। पञ्चम अवस्था अनाम, अगम,

अगोचर और अलग है। इसका न तो कोई नाम है और न रूप है।

अनुभव में ब्रह्म की चार अवस्थाओं तक का तो पता मिलता है वह भी विरले ही महापुरुषों को, परन्तु इससे आगे न कोई कह सका और न मालूम कर सका। विषय अत्यन्त गहन है हमने अपनी सामर्थ्य भर उसको सरल करने का उद्योग किया है लेकिन फिर भी आपको सम्भव है थोड़ी कठिनाई पड़े। इसका इलाज भी आपही के पास है—बारम्बार पढ़िये, मनन कीजिये और साथ ही एकाग्रता (Consentration) के साधन कीजिये। फिलासफी के सिद्धान्तों को जानने के लिये यही तीन औजार हैं

अब उपनिषद्-वाक्य की ओर ध्यान दीजिये—

जागरित, स्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमामात्राप्तेरा दिमत्त्वा द्वाप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवतिय एवं वेद ॥ ६ ॥

स्वप्नस्थानस्तैजस "उ" कारो द्वतीया मात्रोत्कर्षादुभयत्त्वा द्वोत्कर्षति ह वै ज्ञान संतति समानश्च भवति नास्या ब्रह्म वित्कुल भवति य एवं वेद ॥ १० ॥

सुषुप्त स्थानः प्राज्ञो 'म' कार स्तृयीया मात्रा मितेरपीतेर्वामिनोति ह वा इद ं सर्वम् पीतिश्च भवति य एव वेद ॥ ११ ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एव वेद य एवं वेद ॥ १२ ॥

इन सबके अर्थों के समझने से पूर्व एक और बात भी याद रखनी चाहिये कि अवस्थाओं के भेद से जीव की और ब्रह्म की तीन २ संज्ञायें हो जाती हैं। उपनिषदों की भाषा में जीव को १-विश्व २-तैजस और ३-प्राज्ञ और ब्रह्म को १-वैश्वानर, २-हिरण्यगर्भ और ३-ईश्वर कहते हैं। अब आगे इसका तात्पर्य्य समझिये :--

जाग्रति समाधि।

राजयोग मार्ग का साधन करते हुए जब अभ्यासी मनोमय कोष में प्रवेश होता है तब सबसे प्रथम जो अवस्था उसको प्राप्त होती है उसका नाम है—"जाग्रति-समाधि"।

जिस प्रकार (अ) अक्षर वर्णमाला के सारे अक्षरों में व्याप्त रहता है और आदि होता है उसी प्रकार यह जाग्रति समाधि आगे आने वाली सर्व योग-अवस्थाओं में किसी न किसी रूप में अवस्थित रहती है। पूर्णरूप से इस अवस्था में प्रवेश हो जाने पर जीव की संज्ञा "वैश्वानर व विश्व" हो जाती है, इसलिये कि अब उसके अन्दर अग्नि प्रज्वलित हो उठी है और घट में प्रकाश झलकने लगा है। प्रकाश का उदय होते ही ज्ञान का आरम्भ होने लगता है, क्यों कि जहाँ प्रकाश होता है वहीं हर वस्तु का ज्ञान हो सकता है, जहाँ अन्धकार होता है वहाँ की कोई भी चीज न दिखाई देती है और न उसके सम्बन्ध में कुछ समझ में आता है।

ज्ञान का आरम्भ यहाँ से ही होने से इस अवस्था को 'प्रथम, आदि, व्यापक इत्यादि' कहा गया है। जो

उद्योग और परिश्रम करके इस योग की आदि अवस्था में पूर्ण हो जाता है उसकी सारी कामनायें पूर्ण होती हैं और जो इसमें अधूरा रहता है वह किसी प्रकार भी आगे को उन्नति नहीं कर सकता।

योगी की कामना ईश्वर प्राप्ति होती है न कि संसारी पदार्थों की चाहना। जो मनुष्य विषय-वासना की पूर्ति के लिये भजन और साधन करता है वह 'जिज्ञासु' नहीं है। जिज्ञासु तो निष्कामता के साथ साक्षात्कार करने के लिये हर समय लालायित रहता है वह अपने पूर्ण बल से आत्म-दर्शन के लिये जुट पड़ता है। इसलिये मन्त्र के (सर्वान कामान् आप्नोति) शब्दों से तात्पर्य्य यहाँ पर योग विद्या के पूर्ण होने से है।

जिस प्रकार संगीत विद्या का विद्यार्थी सप्त स्वरों में से प्रथम स्वर (अ) पर अधिकार प्राप्त किये बिना गायनाचार्य्य नहीं बन सकता इसी प्रकार ब्रह्म विद्या प्राप्ति की इच्छा रखने वाला मनुष्य भी इस ब्रह्म के प्रथम पाद कि जिसका नाम (अ) है पूर्ण रूप से जाने बिना किसी हाल में भी ब्रह्मनिष्ट वा योगाचार्य्य नहीं हो सकता। यह 'माण्डूक' उपनिषद की राय है कि जिसका वर्णन उपरोक्त नवे मंत्र में किया गया है। इस समाधि में सतोगुण प्रधान रहता है।

अब आगे ब्रह्म के द्वितीय पाद और स्वप्न समाधि का वर्णन आयेगा कि जिसको उपनिषदकार ने दशवें मंत्र में बतलाया है ध्यानपूर्वक सुनिये.—

स्वप्न-समाधि ।

योग की प्रथम अवस्था अथवा मन का प्रथम चरण समाप्त हो गया अब अभ्यासी दूसरे चरण में प्रवेश होने लगा है। यह अवस्था उससे ऊंची और बीच की है। समाधि या योग की इस अवस्था में साधक को संस्कार राशि में प्रवेश होना होता है, उसकी सफाई करनी होती है जैसा कि हम पीछे वर्णन कर आये हैं इसीलिये यहाँ की हालत बिलकुल स्वप्न-ऐसी होती है। स्वप्नावस्था में पड़ा हुआ मनुष्य जिस प्रकार अपने अन्दर अनेक प्रकार का दृश्य देखता हुआ और उनमें विहार करता हुआ भी सोता रहता है उसी प्रकार इस अचेत अवस्था में योगी को अनेक २ प्रकार के तमाशे अन्तर में दिखलाई देते हैं। भेद केवल इतना है कि उनमें ठहराव नहीं होता। आते हैं और जाते हैं। यों ही करते-करते थोड़े दिन में यह अवस्था समाप्त हो जाती है।

जन्म-जन्मान्तर से इकट्ठे किये हुये संस्कार इस प्रकार समाधि अवस्था में भोग के खत्म किये जाते हैं अथवा उनको निकाल के बाहर फेंक दिया जाता है। उस समय मन शुद्ध और निर्मल बनता है। अब उनमें कोई विकार व कोई ख्याल नहीं रहा। वह खाली हो चुका है। आगे चल कर वह शान्त और निर्मल दिखाई देने वाला है कि जिसको उपनिषदों ने सुषुप्ति का नाम दिया है। यहाँ तक योग की स्वप्नावस्था है।

इस स्वप्नयोग द्वारा जो साधक ब्रह्म के द्वितीय पाद को पूर्ण जान लेता है उसका नाम "तैजस" हो जाता है। इस स्थान के योगी में समानता इत्यादि दिव्य-गुण थोड़े २ आने लगते हैं। इसका ज्ञान प्रथमावस्था वाले से कुछ २ ऊँचा हो जाता है। उसकी संतान (शिष्य मंडली) में ज्ञानी और ब्रह्मविद् पुरुष होने लगते हैं। यही ब्रह्म की द्वितीयावस्था (उ) है। इसी का नाम रजोगुणी-समाधि है।

इन सबका विवरण हम पीछे लिख आये हैं इसलिये यहां पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

सुषुप्त-समाधि ।

यह तीसरी तमोगुणी समाधि है। इसमें न तो प्रथम समाधि की तरह ध्येय अथवा इष्ट सम्मुख है और न द्वितीय समाधि की तरह रजोगुणी अवस्था "चंचलता" वा उथल पुथल है बल्कि यह सुषुप्ति की तरह बिल्कुल शून्यावस्था है। न अपना होश न किसी दूसरी वस्तु का ज्ञान।

ओम् के उच्चारण के समय पहले होठ खुले थे और शब्द का जन्म हुआ था। दूसरी अवस्था में होठ खुले रहे और शब्द का ठहराव रहा। अब तृतीया वस्था में होठ बन्द हो गये, शब्द लय हो गया अब कुछ भी नहीं रहा।

(अ)

ब्रह्म ने होठ खोले, शब्द प्रगट हुआ, आनन्द और अमृत

की धारों ने चारों ओर अपना पसारा फैला दिया। ब्रह्मा जी को होश हुआ। उन्होंने ने भी अपने हाँथ-पाँव संभाले। उत्पत्तिकाल आरम्भ हुआ यह सतोगुण प्रधान ब्रह्म की प्रथम अवस्था (अ) कहलाती है।

(उ)

सृष्टि उत्पन्न हो गई, अब उथल-पुथल होने लगी जब तक इसका विस्तार और ठहराव रहेगा, जब तक चचलता और द्वन्द रहेगा तब तक ब्रह्म की द्वितीयावस्था रजोगुण प्रधान (उ) कही जाती है।

ब्रह्म के होठ धीरे २ बन्द होने लगे। शब्द मन्दा पड़ गया आकर्षण शक्ति ने समेटना शुरु कर दिया। समय आने पर खुले हुये होठ मिल गये। अब न शब्द का पता रहा और न सृष्टि का।

इस ब्रह्म की तृतीयावस्था का नाम (म) है। यहाँ पर तमोगुणी राज्य है, प्रलय अवस्था है। यह उसका तीसरा पाद है जिसका ज्ञान "सुषुप्ति-समाधि" में होता है।

ब्रह्म की इस तृतीयावस्था का ज्ञान होने पर मनुष्य की संज्ञा "प्राज्ञ" हो जाती है उपनिषदें ऐसे प्राज्ञ पुरुष के लिये (इदं सर्वं) लिखती हैं जिसका अर्थ यह है कि उसको इन तीन अवस्थाओं का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता है। उसके पास बैठने वाले सतोष प्राप्त करते हैं संसार में वह प्रतिष्ठित समझ कर पूजा जाता है

और उसकी बात प्रमाणीक मानी जाती है।

इस प्रकार हमारी बतलाई हुई राजयोग की तीन समाधियों का वर्णन उपनिषदों में पाया जाता है। आज-कल के भाष्यकारों ने जो टीका-टिप्पणी उपनिषदों पर की है वह शब्दार्थ के लिहाज से चाहे ठीक हो परन्तु यह लोग उपनिषदकार के यथार्थ भाव के दर्शाने में बिल्कुल असमर्थ रहे हैं। इसका कारण उनके अन्दर अनुभवी ज्ञान की कमी है। शुष्क पंडिताई से अनुभवी पुस्तकों का बोध नहीं हो सकता, यह मानी हुई बात है।

पंडित जन हमारे पूज्य हैं, उनको हमारे इस कथन से बुरा नहीं मानना चाहिये परन्तु बात वास्तव में ऐसे ही है। यदि तुम दीपक दिखा कर संसारी लोगों के कष्टों को दूर करना चाहते हो, यदि तुमने ऋषि वाक्यों के प्रचार का बीड़ा उठाया है तो साधन और अभ्यास में थोड़ा कष्ट और उठाओ। अपराविद्या के साथ २ परा विद्या को भी सीख लो। तब तुम दूसरों को यथार्थ ज्ञान दे सकोगे और दूसरों का कल्याण कर सकोगे। यदि ऐसा करने को तैयार नहीं हो तो चुप हो जाओ अपना ज्ञान अपने लिये ही रक्खो। औरों को भ्रम में क्यों डालते हो और उनका धन व समय क्यों नष्ट करते हो क्या यह पाप नहीं है?

ब्रह्म का चतुर्थ पाद।

जिन अवस्थाओं का वर्णन ऊपर आया है वह मनोमय कोष में आती हैं सुषुप्तावस्था के प्राप्त होते ही मनोमय कोष समाप्त

हो जाता है अब आगे विज्ञानमय कोष की बारी आती है यह गुणातीत अवस्था है इसीलिये इसको अर्धमात्रा (‿) कहते हैं यह ब्रह्म की चतुर्थावस्था है इसी को चतुर्थपाद कहते हैं कि जिसका ज्ञान "सम्प्रज्ञात-समाधि" में होता है। ओ३म् उच्चारण के समय जिस समय तुम अपने होठों को बन्द कर चुप हो जाते हो तो पीछे थोड़ी देर तक एक गूंज सी रहती है फिर आगे उसका भी पता नहीं चलता।

यह गूंज जो है वही चतुर्थावस्था है इसका भी कोई न कोई रूप है। इसका अस्तित्व है तभी तो सुनाई दे रही है चाहे अति सूक्ष्म ही क्यों न हो परन्तु है अवश्य। चूंकि इसका रूप है इसलिये इसका भी नाम (‿) है। जैसा रूप वैसा ही नाम।

यह विज्ञानमय कोष की प्रथमावस्था "सम्प्रज्ञात-समाधि" का दर्शन है द्वितीयावस्था "असम्प्रज्ञात-समाधि" को आजतक न कोई बता सका और न यह वर्णन करने में आ सकती है।

श्री कबीर साहब व नानक साहब की वाणी में पंचम पद का कुछ वर्णन मिलता है अवश्य, परन्तु वह न होने के बराबर है वास्तव में यह अवस्था अकथनीय है।

चार छोड़ पचम पद पावै।
कहे कबीर हमरे ढिग आवै॥

(श्री कबीर साहब)

जहाँ तक नाम और रूप है तहां तक माया होती है जब नाम रूप के परे पहुँच गया तो कैसे समझे और किन शब्दों में

यहि यह पंचम पद का वृत्तान्त है। यहाँ न बुद्धि की गम है, न मन और चित्त की पहुँच है। परन्तु है यह एक अवस्था, इसलिये यहाँ ही अन्त नहीं हुआ अभी और आगे चलना है।

इस चतुर्थपाद को उपनिषद् (अद्वैत, अव्यवहार, प्रपञ्चोपशम् शिव इत्यादि) कथन करती है। जिसके अर्थ यह हैं कि वहाँ एक के सिवा दूसरा नहीं रहता, न कोई वहाँ व्यवहार है, न प्रपञ्च या माया है वहाँ केवल एक आनन्द-स्वरूप आत्मा का प्रकाश हैं। इसका नाम अर्धमात्रा ( ) है। यह आत्मा मे आत्मा को प्राप्त होती है।

यह उपनिषद् के अर्थ हैं। इस मंत्र में उपनिषद्कार ने (आत्मयोग) की व्याख्या की है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में मनोयोग, सम्प्रज्ञात में बुद्धि-योग और यह आत्म-योग है। यहाँ पर द्वैतभाव मिटकर अद्वैत रह जाता है। यही अद्वैतवादियों का स्थान है।

जिन पुरुषों को यहाँ तक की पहुँच नहीं हुई उनके लिये अद्वैत की बातें करना थोथी और निरर्थक है। जिनको यह पद प्राप्त है, जिनकी बैठक इसी स्थान पर है ऐसे महापुरुष यदि अपनी अवस्था का वर्णन करें तो ठीक है परन्तु बिना पहुँचे हुये सुनी हुई बातों का कथन करना नास्तिकता का बीज बोना है।

अद्वैतवादी चाहे इसको अन्तिम पद मानें परन्तु हमारे अनुभव से तो यह भी माया का ही एक स्थान है हमको तो इससे आगे चलकर भी सेकड़ों अवस्थाओं से गुजरना पड़ा है और

अभी न जाने कितना और शेष है। क्या जाने कभी पार मिलेगा या नहीं।

महामाया।

यद्यपि यहाँ पर महाकारण माया काम करती हुई भासती है परन्तु है तो सही। जहाँ एक होता है वहाँ दो अवश्य होता है जहां अद्वैत होगा वहाँ द्वैत होगा, फिर द्वन्द कहा पार हुआ इसी लिये हम कहते हैं कि यहा भी दो वस्तुये माया और ब्रह्म मौजूद हैं क्योंकि द्वन्द ही माया है।

अनेक आचर्यों ने अपनी अपनी पहुँच के अनुसार इस स्थान का रूप अनेक प्रकार से प्रकट किया है जैसे अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वेता द्वैत इत्यादि परन्तु इन सबमें नाम मात्र का ही भेद हैं। साधकों को इन झगड़ों में नहीं पडना चाहिये उनको तो अपने क्लास के कोर्स की पुस्तकों से ही सम्बन्ध रखना ठीक है समय आने पर ज्ञान की पुस्तक स्वय ही हो जॉयगी उस समय किसी पुस्तक से सहारा लेने की आवश्यकता न पडेगी।

यहाँ तक पाच समाधियों का विवरण समाप्त हुआ और इन्हीं पञ्चयोगों के साथ साथ विज्ञानमय कोष भी समाप्त हो चुका अब आगे आनन्दमय कोष का वर्णन है। इसको थोड़ा सा और बताके आगे इस अपने कथन को "योग क्या है?" समाप्त करेंगे।

धर्म-मेघ समाधि या साम्यावस्था ।

यदि समाधि-शब्द के अर्थ व्याकरण से समानता या सम-भाव के हो सकते हैं तब तो ऊपर कही हुई समाधियों को समाधि कहना ठीक नहीं है बल्कि यह योग-अवस्थायें हैं क्योंकि उनमें वृत्तियाँ व्यवहार से हटकर परमार्थ की ओर खिंच जाती हैं किसी किसी दशा में तो व्यवहार सम्पूर्ण नष्ट ही हो जाता है तब समानता कहां रही ।

समता तो यह है कि कृष्ण महाराज की तरह व्यवहार भी पूरा निभावे और परमार्थिक जीवन भी पूर्ण रक्खे। इसीलिये गीता में भगवान ने इन अवस्थाओं को योग नहीं माना उन्होंने समता को ही योग माना है गीता बतलाती है—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

अर्थ—भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! एकाग्र चित्त हो करके अथवा दुविधा को दूर करके, सफलता और असफलता को बराबर समझते हुये, महत्त्व त्याग के कर्म कर । इस प्रकार की समता आ जाना ही योग या समाधि का सबसे ऊँचा दर्जा है ।

जिस समय मनुष्य कर्म करता हुआ अकर्मी रहे । जिस समय स्वभाव ऐसा निर्मल और शुद्ध हो जाय कि व्यवहार के समय भी अपने लक्ष्य से न हटे । जिस समय ईश्वरीय गुणों के

अधिक आ जाने से व्यवहारिक कर्म स्वय ही धर्मानुसार होने लगें, और जिस समय अपने-पराये का भेद हृदय से जाता रहे, तथा राग-द्वेष छुट जाय, हर्ष-शोक के समय मन की दशा एक भी रहे इत्यादि। इस अवस्था को "धर्म मेघ योग वा सम-योग" कहते हैं, सन्तों के यहाँ इसका नाम "सहज-समाधि" है।

सहज-समाधि वाला किसी नियत समय पर बैठकर साधन करता हुआ नहीं दिखाई देगा वल्कि उसके व्यवहारिक काम ही उसके साधन होते हैं। अपने व्यवहार को ठीक कर लेना ही योग का अन्तिम लक्ष्य है। जब तक व्यवहार नहीं सँभलेगा तब तक वह मनुष्य श्रेणी में नहीं आ सकता और न अपने को खुदा की शक्ल का बतला सकता है। समीपत्व द्वारा ईश्वरीय गुणों का सम्पूर्ण रीति से धारण कर लेना ही तद्रूपता है यही सबसे ऊँची सिड्ढी ध्रुवपद है। यही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

कर्त्ता होते हुये भी अकर्त्ता रहे। जिन्दगी रखता हुआ भी मर मिटे। अपने मे अलग देखता हुआ भी औरों को अपना ही अंग समझे। ऐसा साम्यावस्था को प्राप्त हुआ योगी 'मनुत्व' पद को पालेता है। बस यही मनुत्व सबसे ऊँची या अन्तिम अवस्था है। यही वास्तव में योग है।

योग क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में जहां तक बताया जा सकता था थोड़े शब्दों में हमने बतादिया यदि अधिक जानने के इच्छुक हो तो एकाग्रता के साधन करो, योग की सरल रीतियों से बिना अधिक परिश्रम के जल्दी पहुँचना चाहते हो तो एक बेर हमारे पास तक आने का कष्ट उठाओ। गुरु की दया से तुम्हारी इच्छा पूरी हो सकती है। ओ३म शम्।

–हमारी योग साधना–

योग के साधारण अर्थ–मिलाप व जोड़ देने के हैं। एक वस्तु को दूसरी से मिला के एक कर देना योग है। अध्यात्म में आत्मा को परमात्मा से मिलाना, जीव को ईश्वर तक पहुंचा देना 'योग' कहलाता है। योग और योग साधन यह दोनों अलग-अलग शब्द हैं। साधन भिन्न-भिन्न हो सक्ते हैं, पर योग सब साधन करने वालों के लिये एक जैसा ही है। योग साधन-वह क्रिया है, जिसके द्वारा योग की मंजिल तक पहुंचा जाता है। योग साधना वह रास्ता है जिस पर चलके मुमुक्षु अपने अभीष्ट स्थान तक पहुँचता है, जीव-ब्रह्म को मिलाके एक करता है।

इस योग की अनेक शैलियाँ इस जगत में पाई जाती हैं। यह नहीं कहा जा सक्ता कि उनमें से कोई एक भी गलत है। इसलिये कि उन आचार्य्यों ने जिन्होंने उन शैलियों को रिवाज दिया था, अपनी निजी खोज से, निजी अनुभव से जब ठीक समझा तब ही दूसरे आदमियों को उन पर चलने का उपदेश दिया था। इस काम के लिये उन पूर्वजों ने देश-काल और वस्तु पर भी दृष्टि रक्खी थी। समय के साथ-साथ उनकी क्रियाएँ भी बदलती गईं। जब कठिन क्रियाओं की आवश्यकता देखी गई तो उसमें कठिनता को प्रवेश करादिया गया और जब समय ने सरलता को चाहा तो उसको सरल करादिया गया। उद्देश्य एक ही रहा कि मनुष्य किसी प्रकार अपने उस आनन्द के भण्डार

तक जा पहुँचे कि जिसको वह अपने पीठ के पीछे छोड़ आया है। इस एक ही उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग और इसके साधन जुदा-जुदा हो गये। इन्हीं सरल साधनों मे से एक हमारी भी शैली है, जो अबतक के सारे साधनों में अत्यन्त सरल है। नित्य प्रति १५ या २० मिनट एकान्त में सुबह-शाम इसका अभ्यास करने से साधक अति शीघ्र उन सारी अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है, जो दूसरी क्रियाओं से वर्षों और जीवन पर्य्यन्त नहीं प्राप्त कर सकता।

इस शैली का जन्म परम पूज्य हमारे श्री गुरुदेव श्री महात्मा रामचन्द्र जी ने दिया था। वह एक महान संत और समर्थ गुरु थे। योग की सारी विभूतियाँ उनकी मुट्ठी में थीं। ब्रह्माण्ड की सारी शक्तियों पर उनका पूर्ण अधिकार था। साधकों के लिये वह एक ऐसे ईश्वर थे जो पल मात्र में कहीं का कहीं पहुँचा देते थे। जिन सौभाग्यशाली जिज्ञासुओं ने थोड़ी देर भी उनका सतसङ्ग लाभ कर पाया था, वह सभी निहाल होगए। बून्द को समुद्र बना दिया, पतित जीवों को महानता के अमृत स्रोत तक पहुँचा दिया।

इन दिनों काल-चक्र ने बड़ा ही भयङ्कर रूप धारण कर रक्खा है, वह बड़े वेग से प्राणियों के शिर पर मंडरा रहा है। मुसीबत और चिन्ताओं ने ऐसा घेरा डाल रक्खा है कि दिन-रात उद्योग करते रहने और चक्की के दाने की तरह पिसते रहने पर भी छूटने की कोई सूरत दिखाई नहीं देती। पढ़ी-लिखी बाबू

पार्टी का तो कहीं ठिकाना ही नहीं रहा। उदर-पूर्ति के लिये चौबीसों घन्टे परिश्रम करते हैं, गुलामी की जंजीरों में अपने को बाँधते हैं, अफसरों की झिड़कियाँ सहते हैं, अपने अन्तःकरण (Conscience) को दूसरों के हाथ बेचते हैं, तो भी दूध घी की कौन कहे, भर पेट रोटी उनको और उनके बच्चों को नहीं मिल पाती, शरीर ढकने को वस्त्र नहीं मिल पाते, इन कारणों से सदैव चिन्ता में भुनते रहते हैं, अपने शरीर की सारी धातुओं को जलाते रहते हैं। चिन्ता और कष्ट शरीर के ऐसे घुन हैं जो गेहूं के दाने की तरह भीतर ही भीतर उसे खोखला कर देते हैं। आजकल के मनुष्य के पास न समय है, न शरीर में बल है, न त्याग है। त्याग के नामधारी साधुओं की जो दशा है, वह किसी से छिपी नहीं है. वह गृहस्थों से भी बढ़के माया के बन्धन में देखे जाते हैं। इन सब बातों को देख के उस दैवी पुरुष के अन्दर दया का स्रोत उमड़ा; इस युग के ऊपर उनकी दृष्टि गई' उनको कठिनाइयों का नकशा आँखों के सामने आया, उनकी फुरसत और ताक़त का अन्दाजा उनको हुआ।

इन सब बातों पर विचार करके उन महापुरुष ने इस युग के लिये योग की उन पुरानी रीतियों में तरमीम करके, उन्हें अत्यन्त सरल बनाके, उनके लाभ देख के और सैकड़ों आदमियों पर अपने इस नवीन अन्वेषण का अनुभव करके इसको प्रचलित किया। यह कहने में हमको तनिक भी संकोच नहीं है कि इस

नवीन मार्ग का अनुसरण करने वाले साधक, इस नवीन शैली का उपदेश लेने वाले और नियम पूर्वक चलने वाले जिज्ञासु थोड़े ही काल में इतनी उन्नति कर जाते हैं, और इतने शक्तिशाली बन जाते हैं कि जिनका मुकाबिला एक ऐसा तपस्वी नहीं कर सकता जो बीस या पच्चीस वर्ष से यौगिक क्रियाएँ कर रहा हो और घर-बार छोड़ के वनवासी बन गया हो। इसकी परीक्षा कोई भी ले सकता है, प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। आगे हम अपनी इसी शैली का संकेत में वर्णन करेंगे, और उसे भौतिक विज्ञान (साइन्स) से साबित भी करते चलेंगे। ताकि उसके समझने में लोगों को भ्रम न रहे। यह नवीन शैली कर्म भक्ति और ज्ञान की एक मिलौनी है। स्त्री-पुरुष, वृद्ध-युवा विद्वान और कुपढ़, गृहस्थ और विरक्त, ऊँच जाति और नीच जाति इत्यादि सभी इसको बड़ी आसानी से कर सकते हैं। धर्म और मजहब भी इसमें बाधा नहीं डालता, क्योंकि जहाँ मजहब की सीमा समाप्त होती है, वहाँ से आगे इसका आरम्भ होता है। इसमें किसी के विश्वास को भी धक्का नहीं पहुँचाया जाता। जो जिस मार्ग पर जा रहा हो, उसे उसी में आगे बढ़ाया जाता है, उससे उसका पुराना साधन, पुराना भजन छुड़ाया नहीं जाता। साकार उपासक, निराकार उपासक, द्वैतवादी, और अद्वैतवादी, आत्मवादी (जैन-बौद्ध) और ईश्वरवादी, वैष्णव और आर्य्य समाजी, शिव उपासक और शक्ति उपासक कृष्ण उपासक मुसलमान और ईसाई इत्यादि, सबके लिये

एक जैसा स्थान है। सभी अपने २ धर्मों के अनुसार अपना २ कर्म करते रहें और उसी के साथ २ थोड़ी देर इस अभ्यास को भी करते जाएँ और देखें कि उसी उनके भजन में अभ्यास करने के दो चार दिन बाद ही कितना रस उनको मिलता है, कितने आनन्द का अनुभव होता है। यह सब मन की एकाग्रता का तमाशा है जो प्रथम दिवस में ही साधक को आने लगती है। जिस मन को वश में लाने के लिये, जिस मन को एक ही लक्ष्य पर साधने के लिये वर्षों परिश्रम करने पर भी सफलता नहीं मिलती, उसकी झलक पहिले ही दिन से यहाँ मिलने लगती है, और आगे अभ्यास से वह दिन-प्रति दिन बढ़ती जाती है और आगे समाधी में परिवर्तित हो जाती है, दर्शन करा देती है। इस सत्सङ्ग की आजाद ख्याली (विचार-स्वातन्त्र्य) और प्रेम का ही यह करिश्मा है कि थोड़े ही समय में इसका प्रचार भारत के प्रत्येक प्रान्त में बढ़ता ही चला जा रहा है और सहस्रों जेंटिलमैन आफीसर जो आँख उठा के भी ईश्वर की ओर नहीं देखते थे आज अभ्यास में लग पड़े हैं। और छोटे-बड़े, हिन्दू-मुसलमान आपस में ऐसे प्रेम से गुथे हुये हैं कि किसी के अन्दर भेद भाव दिखाई ही नहीं देता। यह सब हम पापियों के लिये श्री गुरुदेव का प्रसाद है, उनको धन्यवाद कहाँ तक दिया जा सके। अब आगे योग विद्या का कुछ इतिहास बता के फिर इस शैली की व्याख्या करेंगे।

योगविद्या का इतिहास।

एक समय था, जब इस पृथ्वी पर चारों ओर वन-जङ्गल और बीहड़ था। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में माता पिता के गर्भ से निकले बिना अनेक कीट उत्पन्न हो जाते हैं वैसे ही उस काल में अनेक योनियों के जोड़े उत्पन्न हुए। मनुष्य भी स्त्री-पुरुष के रूप में युवावस्था लिये हुए इस धरती पर आया। वह वन पशु के सदृश्य अबोध और नंगे शरीर से स्थान-स्थान पर इन जंगलों में विचरने लगा। वह अपना रूप देखता था। अपने साथियों का रूप देखता था, पर उसे यह ज्ञान नहीं था कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और क्या मेरा कर्तव्य है, यह सृष्टि का आदि काल था।

इन ऐसे वन मनुष्यों में से कुछ के मस्तिष्क में एक प्रेरणा हुई और उससे उनकी बुद्धि का विकास हुआ। उन्होंने उस प्रेरणा के द्वारा अपने को कुछ समझा और थोड़े से अपने कर्तव्य समझे। यह ऐसे लोग-'आदि ऋषि' कहलाये और उस छोटी सी प्रेरणा को-'वेद' कहा गया, जो अति सूक्ष्म रूप में पलमात्र के समय में उन ऋषियों के मस्तिष्क में उतरी थी।

इन आदि ज्ञानियों ने अपनी मनुष्य जाति के सभी प्राणियों को खोज-खोज के इकट्ठा किया। उन्हें कुछ बोध कराया, उनको उनके कर्तव्य बतलाये। उन्हीं दिनों एक 'मनु' नाम के ऋषि हुए जिन्होंने अपनी ज्ञान शक्ति के सहारे सामाजिक रीतियों के नियम बनाये और चार वर्णोंकी व्यवस्था चालू की। इन सब बातों में

मनुष्य जिन जिन वस्तुओं को अपने स्थूल नेत्रों से देख रहा था, उसका कुछ = तो ज्ञान हुआ परन्तु इसके अन्तर में क्या छिपा हुआ है, यह रचना कैसे हुई, किसने की ? इसका उसे तनिक भी बोध नहीं हुआ।

कहा जाता है कि सामाजिक व्यवस्था ठीक हो जाने पर भी वह लाखों वर्ष तक भौतिकवाद में ही रहा, इससे परे कोई चैतन्य आत्मा भी है, इसका ज्ञान उसे नहीं हुआ। एक बेर श्री ब्रह्माजी ने इन सब को एकत्र कर सभा की, उसमें जो प्रवचन उनका हुआ, उसमें उन्होंने आत्मा की ओर भी इशारा किया, उसकी थोड़ी परिभाषा भी की, परन्तु यह उन्होंने भी नहीं बताया कि ऐसी आत्मा को कैसे जाना जाता है, आत्म देश तक किन साधनों से पहुँचा जाता है।

इसके लाखों वर्ष पीछे एक 'कपिल' नाम के ऋषि इस धरती पर आये, वह जन्म से ही सिद्ध थे। हिन्दुओं के यहाँ चौबीस अवतारों में उनका नाम भी लिया जाता है, उन्होंने उत्पन्न होते ही जिह्वा खोली और अपनी माता देवहूती को मोक्ष ज्ञान का उपदेश दिया। आगे उन्होंने अपने कठिन तप की रश्मि वना के एकान्त में बैठ के इस संसार रूपी मथनी को मथा और उसमें से एक विचित्र मक्खन निकाला। उस मक्खन में उन्होंने देखा कि उसके अन्दर सूक्ष्म रूप से पचीस तत्त्व मिले हुए हैं, जिनमें चौबीस जड़ हैं और एक चैतन्य है। उन्होंने यह भी देखा कि उस चैतन्य तत्त्व से एक प्रकाशवती विद्युत धारा फूट के इन

चौबीस जड तत्त्वों को ठोकर दे रही है, इन सब को घुमा रही रही है, और यही सारी रचना का आधार है। चूँकि इनकी मनन शक्ति अति तीव्र थी, इसलिये यह महात्मा 'श्रीकपिल देव मुनि' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

खोज।

श्री कपिल की इस फिलासफी को सुन के लोगों में जोश (उत्साह) आया, सहस्त्रों इनके अनुसंधान में लग पड़े और अनेक यन्त्रों की रचना कर जगत् के भौतिक तत्त्वों की खोज आरम्भ कर दी और 'भौतिक विज्ञान' अथवा साइंस को उन्होंने जन्म दिया। इन्हीं में से एक ऋषि और भी आगे बढ़े और उन्होंने पच्चीसवें चैतन्य तत्त्व (आत्मा) की खोज का बीड़ा उठाया और एकान्त में बैठ आत्मा पर अपने अन्वेषण आरम्भ कर दिये। कठिन परिश्रम के पश्चात् यह सफल हुए, इन्हें आत्मा का पता मिल गया और जिन क्रियाओं से उन्हें सफलता मिली थी, उन पर भी इनका विश्वास हो गया। आगे इन्होंने अपना प्रचार आरम्भ कर दिया, और यह योग के प्रथम आचार्य कहलाये। इनका नाम 'महर्षि पातञ्जलि' था। इनका रचा हुआ ग्रन्थ 'योग-दर्शन' के नाम से प्रसिद्ध है, जो योगविद्या का सबसे प्राचीन और मुख्य ग्रन्थ माना जाता है। इस प्रकार इस विद्या का प्रादुर्भाव हुआ।

सिद्धान्त।

महर्षि पातञ्जलि अपनी खोज में इस परिणाम पर पहुंचे कि मनुष्य के अन्दर एक चिद् शक्ति है जो हर समय तरंगें लेती

रहती है। यह चित्त में रहती है, इसकी ही ठोकर से मन बुद्धि व इन्द्रियाँ, प्राण सब चलायमान रहते हैं। जब तक इस चित्त को शान्त न किया जाय, इसके अन्दर से बहने वाली धारों को न रोका जाय, तब तक-आत्मा की खोज असम्भव है। इस चित् शक्ति के धक्के से ही मस्तिष्क, स्नायु, नस नाड़ी और शरीर का रोम-रोम चलायमान रहता है आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इन सब को शान्त करना होगा, तब बुद्धि उस आत्म तत्त्व को पकड़ने में समर्थ हो सकेगी। इसलिये कि वह-आकाश तत्व से भी सहस्रों गुना अति सूक्ष्म है। बुद्धि को निश्चय करने के लिये यह अन्तर की आँधी शान्त करनी होगी। इसीलिये प्रथम सूत्र में उन्होंने बताया है कि-"योगश्चित्त-वृत्ति निरोधः"। जिसका अर्थ है कि चित्त की चंचलता रोकने पर ही आत्मा का साक्षात्कार अथवा आत्मा से योग हो सकता है।

मनोशक्ति का अनुभव

जिन दिनों महर्षि इस आत्मतत्त्व के अन्वेषण में लगे हुए थे, एक दिन उन्हें अपने अन्तर क्षेत्र में एक अद्भुत वस्तु दृष्टि गोचर हुई। उन्होंने देखा कि वह वस्तु पारेकी तरह हिल रही है। उसमें एक सैकिन्ड को भी स्थिरता नहीं आती। उनको यह भी अनुभव हुआ कि उस वस्तु ने अपने अन्तर की चैतन्य आत्मा से ही कनेक्शन नहीं स्थापित कर रक्खा है बल्कि अन्तरिक्ष में स्थित ब्रह्माण्डीय मन से जो ब्रह्मा की संकल्प शक्ति

का मुख्य स्थान है, अपना सम्बन्ध जोड़ रक्खा है, और हर पल शक्ति खींचती रहती है और उसीके सहारे अपना काम करती है। उसके इस स्थान में-कल्पना शक्ति और इच्छा शक्ति निवास करती है, यह भी उन्होंने देखा। कुछ गहरी दृष्टि से देखने पर यह भी पता उन्हें चला कि-उस स्थान से शक्ति की दो धारें फूट रहीं हैं, एक ऊपर को जारही और दूसरी नीचे को ससार की ओर आरही है। जो धार ऊपर को आत्मा की ओर प्रवाहित हो रही थी, उसकी तरङ्गें अत्यन्त धीमी और शिथिल अवस्था में हैं, उसका रङ्ग मटैला और भद्दा हो रहा है और जो नीचे को गिर रही है, उसका प्रवाह बड़े वेग से बह रहा है। वह प्रतिक्षण बुद्धि को, इन्द्रियों को, शरीर और मस्तिष्क के सारे परिमाणुओं को, यहाँ तक कि जीवात्मा को भी धक्का दे के नीचे गिराने की कोशिश कर रही है और संसारी विषयों की ओर ला रही है। अन्तर की सारी उथल-पुथल इसीके द्वारा हो रही है। इस शक्ति का नाम उन्होंने-'मन' रक्खा।

यह सब देख कर उन्होंने सोचा कि—जब तक चंचलता को नष्ट न किया जाय, जब तक चंचलता के देने वाले इस मनको शान्त न किया जाय जाय, तब तक आत्म-साक्षात्कार की सफलता नहीं मिल सकती। उन्होंने विचारा कि—किसी तरह यदि इस मन की बाहिर की ओर बहने वाली धार को रोक कर सारा प्रवाह ऊपर को ओर कर दिया जाय, तो कुछ दिवस में यह शान्त भी हो सकता है, और आत्म क्षेत्र तक पहुंचा भी सकता है।

जब इस काम के करने के लिये ऋषि ने उद्योग आरम्भ किया, नीचे गिरने वाली धार को रोकने, मनो-शक्ति को ऊपर की ओर चलाने और मन को उसी के स्थान में शान्त करने की चेष्टा की तो उनको बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। जो चीज, स्वभाव से ही चञ्चल हो, जो पारे की तरह मुट्ठी की पकड़ में ही न आवे, उस पर काबू पाना आसान काम नहीं है। पक्का इरादा और दृढ़ संकल्प हो तो दुनियाँ में कोई ऐसा काम नहीं है जो मनुष्य के लिये असम्भव हो। धीर पुरुष मन को एक ऐसा बन्दर बताते हैं कि जिसने शराब पी रक्खी हो और उसके नशे में मतवाला हुआ उछल-कूद लगा रहा हो। इस मन ने भी विषय रूपी मदिरा का प्याला चढ़ाया हुआ है, और उसी मस्ती में इधर-उधर दौड़ लगा रहा है। कोई २ मन को ऐसा भौंरा बतलाते हैं जो कली-कली का रस लेता फिरता है, एक पर जम कर नहीं बैठता।

मुश्किलें आईं, समय भी लगा, पर ऋषि ने हिम्मत नहीं हारी, वह अपना प्रयत्न करते ही चले गये। मन के संग्राम में कभी वह विजयी होते और कभी निष्फल होते। इस तरह कुछ काल में उन्होंने मन को परास्त कर दिया और उसकी सम्पूर्ण शक्तियों को अपने अधिकार में ले लिया।

यह ऐसी सफलता उनको जिन प्रयोगों से मिली, उसका नाम उन्होंने 'अष्टाङ्गयोग' रक्खा। इसमें एक ही योग के आठ अंग वर्णन किये गये हैं। महर्षि का यह अनुभव इतना पूर्ण है,

कि योग नाम का कोई भी साधन हो, कोई भी आत्म साक्षात्कार का मार्ग हो, भक्ति योग, कर्म योग, हठ योग, ज्ञान योग, शब्द योग, इत्यादि में से कोई योग हो बिना इन अष्टाङ्ग के पालन किये कभी उनमें सफलता नहीं मिलपाती, सब पर लागू होता है। आगे इनकी क्रमशः संक्षेप में व्याख्या की जाती है:—

अष्टांग-योग

जिस प्रकार शरीर के हाथ पाँव इत्यादि आवश्यक अंग अलग २ होते हुए भी शरीर के भाग हैं उनको सब को मिलाकर ही शरीर संज्ञा होती है, इसी प्रकार योग रूपी शरीर के यह आठ अंग हैं, इन आठों का साधन करने से ही योग शरीर पुष्ट होता है, और अभीष्ट तक पहुंचता है। ऐसा नहीं है कि पहिले एक अंग को पकड़ के पूरा कर लो तब दूसरे में हाथ लगाओ, ऐसा करने से तो जन्म जन्मान्तर समाप्त हो सकते हैं और सफलता फिर भी नहीं मिलती। सब को एक साथ साधो और आगे बढ़ते चलो, काम जल्दी पूरा करने का यही तरीका है। जिस प्रकार एक पहलवान व्यायाम और तेल की मालिश से अपने शरीर के सारे अङ्गों को मजबूत बनाताऔर पुष्ट करता है उसी प्रकार तुम भी यौगिक क्रियाओं द्वारा इस योग के सभी अङ्गों को पूर्ण करते चलो, तुम्हारा रास्ता अति सुगम हो जायगा। इस योग के आठ अङ्गों के नाम यह हैं :-

नाम और विधि

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधी, यह योग के आठ अंग है। प्रथम हम 'यम और नियम को समझाते हैं :—

यम-नियम से तात्पर्य्य त्यागने और ग्रहण करने का है। बुरे कर्म और बुरे भावों को त्यागना 'यम' है, और सद् भाव और सद्कर्मों को पकड़ना नियम है। इसकी साधना में मनुष्य को अपना स्वभाव बदलना पड़ता है। मन को रज और तम से हटाकर सत् मे लाना होता है। कहने को तो यह एक छोटी सी बात है, पर स्वभाव का बदलना बड़ा ही कठिन काम है। दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेने और अपने ऊपर कड़ी दृष्टि रखने पर भी स्वभाव धोखा दे जाता है और अवसर आने पर वही काम हम से करा डालता है कि जिसको त्यागने का व्रत हमने ले रक्खा था। इस तरह हम अपने स्वभाव के धक्के से बारम्बार गिरते हैं। मनुष्य को एक बात अगर याद रहे कि यह स्वभाव हमारा ही बनाया हुआ है, हम ही इसके ब्रह्मा हैं, हम इसके गुलाम नहीं हैं, इसके म[illegible]
और म[illegible]
बदल जाता है और यम-नियम का पालन होने लगता है।

भोजन

स्वभाव को बदलने और मन को सात्वकी बनाने के लिये भोजन मुख्य वस्तु है। मन और प्राण भोजन से बनता है।

सात्विकी भोजन सात्वकी मन तैयार करता है और राजसी व तामसी भोजन राजसी व तामसी मन बनाता है। जिस भोजन में गन्दी वस्तु हों, मिर्च मसाले कम हों, वही सात्वकी गिना जाता है। भोजन के समय चुप रहना और ईश्वर व गुरू का ध्यान रखना भी भोजन को सात्विकी बनादेता है। उस समय भोजन के पदार्थों में स्वाद नहीं अनुभव होता, मन जिह्वा पर रस लेने नहीं आता, वह किसी दूसरी धुन में मस्त होता है। ऐसा ब्रह्म स्वरूप का चिन्तन किया हुआ भोजन स्वास्थ्य के लिये अति उपयोगी होता है, क्योंकि उस समय मुख उतना ही अन्न लेता है कि जितनी शरीर को आवश्यकता है।

आवश्यकतानुसार

आवश्यकतानुसार बोलना और पुस्तकें पढ़ना भी साधकों के लिये लाभदायक होता है। इससे गंभीरता आती है, मस्तिष्क बलवान होता है, और साधना में सफलता जल्दी मिलती है। जो बहुत बक-बक करते हैं, व्यर्थ की बातें किया करते हैं, एवं बहुत पढ़ते हैं, उनकी वृत्ति चञ्चल रहती है, वह योग के किसी अंग को पूरा नहीं कर पाते।

यम और नियम चरित्र निर्माण के साधन हैं। जिनका चरित्र अच्छा नहीं, जिनका व्यवहार ठीक और उत्तम नहीं वह ईश्वर को कभी नहीं पा सकते। हृदय में जीवमात्र के लिये दया और प्रेम होना, ईर्षा व राग-द्वेष से बचना यह यम का प्रथम साधन है। दूसरा सत्य है, भीतर भी सत्य हो, बाहिर भी सत्य हो,

झूठ कपट चालाकी मक्कारी स्वभाव में न हो, यह ही 'सत्य' है। किसी दूसरे की वस्तु चोरी या दगाबाजी से लेने की इच्छा न होना 'अस्तेय' है। अपने बल और वीर्य की रक्षा करना 'ब्रह्मचर्य्य' है। अपने धन में विशेष आसक्ति न होना, एवं अत्यन्त कष्ट होने पर भी दूसरों से अधिक सहायता न लेना 'अपरिग्रह' कहलाता है। दूसरों का धान्य खाने अथवा दूसरों से धन की सहायता लेने से मनुष्य थोड़ा गिर जाता है। उसकी स्वतन्त्रता व स्वाभिमान को एक धक्का लगता है, उस उपकार करने वाले मनुष्य की सूरत भजन के समय में भी सन्मुख आजाती है, और वह सदैव उसका आभारी रहता है। कर्जा व ऋण लेने वाले की भी यही दशा होती है इसलिये इनसे बचना अपरिग्रह कहलाता है। यह पांच यम उन्होंने बतलाए हैं।

नियम

नियम में शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणिधान, आते हैं। शरीर व हृदय दोनों को पवित्र रखना शौच है। अधिक लोभ, और अधिक तृष्णा से बचना सन्तोष है। तृष्णा एक ऐसी अग्नि है कि जब मनुष्य के अन्दर यह प्रज्वलित हो उठती है तो उसे दिन रात चैन नहीं लेने देती। स्वप्न में भी शान्ति उसे नहीं मिलपाती। अपने मन को मजबूत बनाना उसमें कष्टों के झेलने की सहन शक्ति पैदा करना, और उसे [illegible] की ओर दौड़ने से रोकना 'तप' कहलाता है। भगवान् [illegible] रहना, उनकी याद रखना 'ईश्वर प्रणिधान' है।

स्वाध्याय

योग साधना करने वाले के लिये बहुत ठूस कर पेट नहीं भरना चाहिये, कुछ हलका रहना चाहिये। बहुत सोना और आलस्य से निठल्ले रहना भी योग साधन के लिये विघ्न है, साधक को किसी न किसी काम में अपने को जुटाये रहना चाहिये। बुरी संगति, अश्लील चित्र, सिनेमा, स्त्री चरित्रों के उपन्यास इत्यादि साधकों के लिये हानि कारक होते हैं। कानों में बुरी आवाज न पहुँचने पाये, आँखों के सन्मुख गन्दे और मन को चंचलता देने वाले दृश्य न आने पायें, मस्तिष्क में गन्दे साहित्य को स्थान न मिलने पाये, जिह्वा से भगवान् चर्चा या श्रेष्ठ विचार ही प्रगट हों यह ही—'स्वाध्याय' कहलाता है। अच्छे लोगों की सुहबत, महा पुरुषों के जीवन चरित्र, ईश्वर अनुराग बढाने वाले ग्रन्थ पढना 'स्वाध्याय' है। मनुष्य अकेला बैठा रहे, परन्तु विषयी पुरुषों की संगति से अपने को बचाये रक्खे, चाहे वह घरवाले और हितू सम्बन्धी ही क्यों न हों, इससे बहुत लाभ मिलता है, यह सब स्वाध्याय में ही आजाता है।

आसन

यम नियम के पश्चात् तीसरा साधन 'आसन' आता है। हठ-योगियों ने अपने यहाँ चौरासी आसन बताये हैं। यह स्वास्थ्य के लिये, शरीर से रोगों को दूर करने और उसे स्वस्थ बनाने के लिये अति उपयोगी हैं। योग विद्या में उनका सम्बन्ध इतना ही है कि स्वस्थ शरीर से साधन किया जा सकता

है, रोगी व निर्बल मनुष्य मन पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। मेलों में कई साधू पैसे लेके चौरासी आसनों का तमाशा दिखाते फिरते हैं, वह योगी नहीं होते, पैसा कमाने वाले नट होते हैं। महर्षि के मतानुसार आसन में स्थिरता होनी चाहिये, थोड़ी-थोड़ी देर में शरीर को हिलाना नहीं चाहिये, इससे लक्ष्य छूट जाता है। सख्ती से किसी एक ढंग पर भी इतनी देर नहीं बैठना चाहिये कि पाँव दर्द करने लगें। दर्द होते ही मन अपने ध्यान से हट कर पाँव में आ जाता है। इसलिये ही बताया है—"स्थिर सुखम्-आसनम्"।

जब हम किसी गहरे भाव में अथवा गहरे विचार में निमग्न होते हैं, किसी मुख्य विषय पर सोचने लगते हैं तो उस समय हमारा शरीर किसी ढंग से ही क्यों न हो वह हिलता डुलता नहीं है, कभी-कभी हमको शरीर का ध्यान ही नहीं रहता, ऐसे ही योग साधना में स्थिरता ही केवल मुख्य है, यही मुख्य साधन है जिसमें स्थिरता और सुख से थोड़ी देर बैठ सकें, ऐसा आसन ध्यान में सहायक होता है।

एक लाइन में।

ध्यान करने के लिये किसी आसन से बैठा जाय, पर उसमें एक चीज बहुत ही जरूरी है, वह है-मेरुदण्ड का सीधा रखना। कमर छाती का पिछला भाग, गरदन और शिर एक ही लाइन में होना चाहिये। शरीर न तो बहुत अकड़ा हुआ हो और न अति ढीला हो। कई साधक इतने ढीले बैठते हैं कि आगे की ओर झुक

जाते हैं, और कई इतने अकड़े बैठते हैं कि उनका शिर पीठ की सीध से पीछे को चला जाता है यह दोनों ठीक नहीं हैं।

जब मनुष्य ध्यान करने बैठता है, अथवा प्राणायाम का अभ्यास करता है, तो मस्तिष्क से निकल कर विद्युत शक्ति, मेरुदण्ड की सूक्ष्म नाड़ियों के द्वारा नीचे को प्रवाहित होती है। धीरे-धीरे वह सम्पूर्ण शरीर के अङ्गों में फैल जाती है, और प्राण, इन्द्रियों व मन की वृत्तियों को अन्दर की ओर आकर्षण करती है। इससे साधना को बहुत लाभ मिलता है। यह मैगनेटिक पावर साधक को ऊँचे उठाने में बहुत सहायता देती है। जो टेढ़े या ढीले बैठते हैं, उनके अन्दर यह प्रवाह रुक जाता है और उनकी उन्नति देर में होती है। शरीर के स्वास्थ्य पर भी इसका प्रभाव पड़ता है, इसलिये सीधा बैठना ही ठीक आसन माना जाता है।

प्राणायाम

प्राण के अर्थ जीवनीय-शक्ति के हैं। इसका विकास करना अथवा इसको संयम में ले आना 'प्राणायाम' कहलाता है। यह एक प्रकार की विद्युत शक्ति है जो शरीर मन और बुद्धि का संचालन करती और उसे नियम में रखती है। हठ योगी इसीको कुण्डलिनी और सन्त 'सुरति' कहते हैं। प्राण को रोकने अथवा मन को एक ही केन्द्र पर एकाग्र करने से इसमें प्रवाह चलने लगता है, सारे अंगों में यह बड़े वेग से दौड़ने लगती है, और नीचे से उठके मस्तिष्क की ओर चलने लगती है। ऐसा होते ही

इसकी धार जो मेरु दण्ड में स्थित इड़ा व पिंगला नाड़ी से हट कर अति सूक्ष्म नाड़ी सुषुम्ना में आजाती है, और ऊपर को बढ़ने लगती है।

दो भेद

प्राणायाम के दो मुख्य भेद हैं, एक अध्यात्मिक प्राणायाम, और दूसरा शारीरिक प्राणायाम। जिस वायु को हम स्वाँस द्वारा अन्दर खींचते हैं, उसको भी 'प्राण' कहते हैं, जिसे बाहिर फेंकते हैं उसे 'अपान' कहा जाता है। वायु एक भौतिक पदार्थ है, शुद्ध वायु जिसमें आक्सिजन का भाग अधिक हो, हमारे शरीर को को बल देती, उसके मलों को जलाती, और स्वस्थ रखती है, इसलिये ऐसी वायु का नाम प्राण रखलिया है। वास्तविक प्राण वह शक्ति है जो शरीरों को बनाती, उन्हें स्थिर रखती और समय पर उन्हें बिगाड़ अपने में मिला लेती है। हमें उसी शक्ति तक पहुँचना है, उसका ज्ञान प्राप्त करना है और उस पर अधिकार कर उसे नियमित रूप से चलाना है। हम अनेक क्रियाओं से ऐसा कर सकते हैं, रेचक-पूरक और कुम्भक भी ,उन क्रियाओं मे से एक हैं। केवल ध्यान के द्वारा भी ऐसा हो सकता है। ध्यान करते समय पहिले मन की गति रुकती है, पीछे प्राण भी अपनी चेष्टा छोड़ देता है। उस समय दिलकी हरकत और नाड़ी की गति भी बन्द हो जाती है, इसको योग की भाषा में 'केवल कुम्भक' कहते हैं। कुम्भक होते ही प्राणशक्ति अपने स्थान पर ठहर जाती है और योगी समाधि में चला जाता है।

'केवल कुम्भक' का नाम ही प्राणायाम है। रेचक-पूरक, कुम्भक तक पहुँचाने के साधन हैं। रेचक-पूरक के बिना भी 'केवल कुम्भक' हो सकता है और यही प्राण शक्ति तक पहुंचता है। योगियों ने रेचक पूरक की क्रियाओं को ही प्राणायाम समझ रक्खा है। इनका ऐसा विश्वास है कि बिना इन क्रियाओं के न तो मन एकाग्र हो सकता है और न ईश्वर प्राप्ति हो सकती है, यह सब थोथा भ्रम है। भक्ति मार्गी, शब्द-मार्गी, प्राणायाम का साधन नहीं करते, उनमें बड़े बड़े महापुरुष हुए और अब हैं, क्या उनको भगवद् साक्षात्कार नहीं हुआ, ऐसा दावा कौन कर सकता है ? यह सब ध्यान योगी ही थे, भले ही इनका ढङ्ग साकार रहा हो व निराकार, पर पूर्ण पुरुष थे, इससे किसी को इन्कार नहीं हो सकता। अपने जीवन काल में अनेक चमत्कार दिखाते हुए और सहस्रों जीवों को सद्-मार्ग की शिक्षा देते हुए निज देश को लौट गये। इन सब बातों को देखते हुए, और हम अपने साधकों पर दृष्टि डालते हुए इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि बिना रेचक पूरक की क्रिया किये भी प्राणायाम हो सकता है और योगी बना जासकता है। हमारे यहाँ की शैली में गुरु अपने आत्म बल से शिष्य की प्राण शक्ति को संचालित कर देता है, उसकी कुण्डलिनी का द्वार खोल सुषुम्ना में प्रवाहित कर 'सहस्रार' तक पहुंचा देता है, उस पर अधिकार करा देता है। इसमें न घ्यना है और न रेचक-पूरक की क्रिया है, केवल गुरू का सहाय है। इससे शारीरिक प्राणायाम नहीं अध्यात्मिक प्राणायाम

जाता है। प्राण शक्ति का संचालन बन्द कर देना ही अध्यात्मिक प्राणायाम बोला जाता है।

शारीरिक प्राणायाम

शारीरिक प्राणायाम का सम्बन्ध केवल शरीर से है। इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है, शरीर में बल आता है। शरीर निरोग रहने पर साधन ठीक बनता है, इतना ही इसका योग व अध्यात्म को लाभ पहुँचता है। यह स्वाँस की वरजिश (Breathing-Exercise) है जो फेफड़ों और आँतों को ताक़त पहुँचाती है, जठराग्नि को प्रज्वलित करती है जिससे पाचन क्रिया ठीक हो के रक्त बनाती, और पेशियों (Muscle) को दृढ़ करती है। इस प्राणायाम में इच्छा शक्ति को साफ रखना होता है। बिना इच्छा शक्ति के यह कुछ काम नहीं कर पाता। ऐसा निश्चय करना पड़ता है कि वायु अमुक स्थान पर पहुँच गई और उस स्थान पर अमुक क्रिया हो गई।

इसमें स्वाँस की क्रिया और प्रतिक्रिया की जाती है, स्वाँस को एक नियमित रूप से निकालना और भरना होता है। फेफड़ों पर दबाव डाल के वायु को खींचने और भरने से हानि पहुँचती है। नाभि के स्थान से वायु खींचना और निकालना चाहिये। ऐसा करने से नाभि का दबाव मेरु दण्ड में रहने वाले स्नायु मण्डल पर पड़ता है और वहाँ का विद्युत केन्द्र जिसको योग [illegible] में 'मणि पुर चक्र' कहते हैं, खुल जाता है। इसके

खुलते ही कुण्डलिनी की शक्ति गुदा के स्थान मूलाधार चक्र (Sacral pluxus) से उठ कर सुषुम्ना में गमन करती हुई इस तीसरे चक्र तक आ जाती है। जब ऐसा होता है तब श्वाँस धीमी हो जाती है, दोनों नथनों से बराबर निकलने लगती है। शरीर में एक अद्भुत आकर्षण और हलका पन महसूस होता है, चित्त की चंचलता थोड़ी देर को नष्ट हो जाती है और साधक आनन्द के समुद्र में गोता लगाता है। यौगिक भाषा में इस अवस्था को 'उन्मनी मुद्रा' बोला जाता है। यह मुद्रा योग की प्रथम सिढ्ढी है, आगे दूसरी अवस्थायें आती हैं।

ध्यान से भी

जो लोग प्राणायाम नहीं करते, केवल ध्यान का साधन करते हैं, उन्हें ध्यान के बल से ही ऐसा होता है। उन में भी उन्मनी मुद्रा के सारे लक्षण प्रगट होने लगते हैं। उनकी भी कुण्डलिनी शक्ति ऊपर को उठके सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है और उन्हें भी 'कुम्भक' हो जाता है। हमारे यहाँ के साधन करने वालों में प्रथम दिन से ही यह अवस्था आने लगती है। इस में शिष्य का कोई-कर्तव्य नहीं, गुरु कृपा का सहारा होता है। गुरु अपने आत्मबल को शिष्य में प्रवेश कर उसके मन व प्राण को स्थिर कर देता है और कुण्डलिनी को ऊपर खींच सुषुम्ना में प्रवाहित कर देता है। ऐसा करने पर शिष्य का परिश्रम व बहुत सा समय बच जाता है और बहुत आसानी हो जाती है।

भेद

हठ योग के अनुसार प्राणायाम के कई भेद हैं, जैसे–सूर्य भेदी, भस्त्रिका, भ्रामरी इत्यादि पर इनमें साधारण प्राणायाम और सूर्य भेदी दो ही मुख्य हैं। ऋषि पातञ्जलि ने केवल-साधारण प्राणायाम को लिया है। दूसरे प्रकार के प्राणायामों का वर्णन हठ योग की पुस्तकों में आया है। साधारण प्राणायाम की विधि बताई जाती है—

स्वस्तिकासन अथवा अर्द्ध पद्मासन पर बैठ जाओ, गरदन-छाती-कमर एक सीधा में हों, दोनों नथनों से धीरे २ श्वाँस अन्दर भरो और उसे थोड़ी देर अन्दर ही रोक लो, फिर बहुत ही रोक २ के अत्यन्त धीरे उसे बाहिर निकालो, जब पूरी निकल जाये, तब बाहर रोक लो, फिर अन्दर भरो, ऐसा प्रातः व सायं तीन से पाँच बेर करलो। गृहस्थ को सिद्धासन वर्जित है, उससे नपुंसकता पैदा होती है, वह विरक्तों के लिये है। गृहस्थ को पाँच प्राणायाम से अधिक नहीं करना चाहिये, वरना रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

प्राणायाम और रोग

प्राणायाम में विद्युत शक्ति का प्रवाह बढ़ जाता है, इससे गर्मी व खुश्की पैदा होती है, शरीर में स्वेद (पसीना) आ जाता है, दिमाग़ गर्मी से भिन्नाने लगता है। यदि स्निग्ध (चिकने) पदार्थ खाने को न मिलें, ब्रह्मचर्य्य ठीक न हो तो प्राणायामी पागल हो जाता है, गले की नसें खुश्की से फट जाती हैं, उनसे

खून आने लगता है, फेफड़े भी खुश्की से या तो सूख जाते हैं, और दमा की बीमारी हो जाती है, या उनके फट जाने से टी. बी. हो जाती है और मनुष्य उसी में चल बसता है। ऐसे पचासों केस हमारी आँखों के सन्मुख आए हैं, इसलिये इसमें बहुत ही सावधानी रखने की आवश्यक्ता होती है। इसमें बतलाने वाला भी अनुभवी होना चाहिये और कुछ दिवस इसका अभ्यास उसके सामने कर लेना चाहिये। चलते-फिरते साधुओं की बताई हुई क्रिया से कई लोग पागल हो गये, हमारे पास भी उन्हें लायागया, उन्हें पागल खाने भिजवा दिया। हमने बहुत काल तक कई प्रकार के प्राणायाम का अभ्यास किया था, हमको कोई रोग नहीं हुआ। हमने अपनी मर्यादा तीन की ही रक्खी थी, फिर भी खुश्की तो आई ही थी, उसे दूर करने को मक्खन-मलाई दूध बादाम लेते रहते थे।

ओजन वायु

प्राणायाम के लिये बस्ती से दूर खुली हवा होनी चाहिये जिसमें आक्सिजन अधिक हो और जल के परिमाण भी अधिक मात्रा में हों। जलाशय के पश्चिमी तट पर बैठ के सूर्य की ओर मुख करके प्रातः का प्राणायाम करने से बहुत लाभ होता है, बड़ी शान्ति मिलती है और स्वास्थ्य सम्हल जाता है। छाती खुली रखना चाहिये ताकि सूर्य की लाल रश्मियाँ सीधी छाती की पसलियों पर पड़ें। इससे फेफड़ों के सारे रोग दूर हो जाते हैं। गन्दे और तङ्ग मकानों में जहाँ पाखाने और नालियों की गन्दी

हवा कार-बन-डाइ-ऑक्साइड भरी हो, प्राणायाम नहीं करना चाहिये। ऐसा करने पर अनेक कीटाणु श्वास के साथ भीतर चले जाते हैं और अनेक रोग उत्पन्न कर देते हैं।

परिवर्तन

प्राणायाम करने से पूर्व यदि हम ऐसा दृढ़ सङ्कल्प करलें कि हम एक आनन्द दायक तेज के बीच में बैठे हैं, हमारे चारों ओर की वायु अलौकिक तेज के द्वारा प्रकाशमान हो रही है, फिर उसी तेज को हम खींच के अन्दर भरने लगें, और अन्दर के अन्धकार व विकारों को प्रश्वास में बाहर फैंकने लगें, तो हमारा शारीरिक प्राणायाम अध्यात्म में परिवर्तित हो जाता है। इस साधन से मल व आवरण छँट जाते हैं और हृदय जल्द शुद्ध हो जाता है। शुद्ध हृदय में ही प्रभू के दर्शन की झलक मिलती है।

सूर्य भेदी

सूर्य-भेदी प्राणायाम मे दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिने नथने को दबाते हैं और बाएँ से श्वास खींच के अन्दर भरते हैं, कुछ रोक के दाहिने से निकालते हैं और बाएँ को किसी उङ्गली से बन्द कर देते हैं। इसी प्रकार दाहिने मे खींच के बाएँ से निकालते हैं और बाएं मे खींच के दाहिने से निकालते हैं। यह भी पाँच से अधिक नहीं करना चाहिये। बैठने के लिये अर्द्धपद्मासन ठीक रहता है। इसका फल यह होता है कि इड़ा व पिङ्गला नाड़ियों के [illegible] खींच के सुषुम्ना में आजाती है और

उसका उत्थान होने लगता है। इच्छा शक्ति इसके साथ रहती होती है वरना छाती पर मोटर चलाने वाले पहलवानों की तरह कुछ हाथ नहीं लगता। आगे इसका अधिक वर्णन न करके 'प्रत्याहार' पर आते हैं।

प्रत्याहार

पाँचवाँ साधन 'प्रत्याहार' है। प्रत्याहार के अर्थ—एक ओर से खींच के दूसरी ओर लाने के हैं। मन की बिखरी हुई शक्तियों को खींचकर मन के स्थान पर लाकर रोकने की कोशिश करना 'प्रत्याहार' कहलाता है। मन इन्द्रियों के झरोखे से निकल के बाहर जाता है। वह पहिले अपना सम्बन्ध किसी एक इन्द्री से करता है फिर इसी के साथ वह बाहर विषयों का रस लेने चल देता है और वहीं फंस जाता है। मन के बाहर चले जाने पर हमको अपने का ज्ञान कुछ नहीं रहता। हम आत्मदेश से बहुत दूर पहुँच जाते हैं। इसको रोकना है, और इसी रोकने का नाम 'प्रत्याहार' है।

यह योग का पाँचवाँ सोपान है, यह पाँचों 'बहिरंग साधन' कहलाते हैं, आगे तीन 'अन्तरंग साधन' आयेंगे। बिना प्रत्याहार के अन्तरंग साधनों में सफलता नहीं मिलती, इसलिये योग विद्या में इसका भी बड़ा महत्व है। प्रत्याहार एक दिन में सिद्ध नहीं हो जाता, निरन्तर, अभ्यास करने और बहुत कोशिश करने पर भी महीने और बरसें इसमें लगजाती हैं। मन आदतों का

वशीभूत हुआ बराबर बाहर को भागने की चेष्टा करता है और जरा सी भूल होते ही वह भाग भी जाता है। उसके भागने के समय साधक यह नहीं देख पाता कि वह किधर को गया। जब थोड़ी देर में होश आता है तब वह जान पाता है कि वह यहाँ नहीं रहा, अमुक स्थान पर जा पहुँचा। उस समय पकड़ के फिर लाने का उद्योग करना ही 'प्रत्याहार' है।

उपाय

इस काम में जल्दी करने के दो उपाय हैं। यदि शक्तिशाली पुरुष हमको सहायक मिल जाय तो उसकी सहायता से मन पर जल्दी काबू हो जाता है। जो स्वयं अपने मन को एकाग्र कर सका है, वह दूसरे के मनको भी एकाग्र कर सकता है, ऐसा नियम है, क्योंकि सारी आत्माओं का सम्बन्ध है। यदि एक मनुष्य अच्छी या बुरी अवस्था अपने अंदर लाए तो पासके बैठने वालों में भी उसका कुछ न कुछ असर होता ही है। शक्तिशाली विचार चाहे वह अच्छा हो या बुरा अपने आस-पास का वातावरण अपने अनुकूल बना लेता है, और जितने लोग उसके अन्दर आते जाते हैं वह उसी तरह के बनते जाते हैं। शांति और आनन्द के रंग में रंगा हुआ महापुरुष शांत व आनन्दमयी वातावरण बनाता है, लोग उसके समीप पहुँचने पर शान्ति व आनन्द पाते हैं। उसके सम्मुख मन का वश नहीं चलता, वह (मन) बिना आघात किये ही जकड़ से रह जाता है। इसका ही नाम सत्संग है। जिसे भाग्य

से ऐसा सत्संग मिल जाय तो फिर उसका कार्य अति शीघ्र पूर्ण हो जाता है, वर्षों का काम दिनों में हो जाता है।

द्वितीय

यदि ऐसा अवसर न मिले तो इसके लिये एक दूसरा उपाय है, इस क्रिया से भी दिन प्रतिदिन मन में निर्बलता आती जाती है और कुछ महीनों में वह थक थकाकर अपने स्थान पर आके ठहर जाता है और उस पर अधिकार हो जाता है। यह क्रिया भी बहुत ही साधारण है। यह बताया जा चुका है कि मन आत्मा से शक्ति लेकर ही अपना काम करता है। इस शक्ति द्वारा वह शक्तिवान तो बनता है पर इस रस्सी से वह बँधा भी रहता है। यदि मन को हम चंचल घोडा मानलें जो किसी रस्सी द्वारा बँधा हुआ हो, तो यह तो विश्वास न करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता कि वह कहीं भाग के चला जायगा। फिर ऐसे घोडे को छूट देने और जब थक कर ठहरने लगे तो दो हंटर देने में क्या हर्ज है। समय आवेगा कि वह थक थकाकर गरदन झुका के मालिक के सामने आके खड़ा होजायगा, उस समय मालिक उससे मनचाहा काम ले सकता है। यही क्रिया मन के लिये भी करनी ठीक पड़ती है। तुम आत्मा हो और मन तुम्हारी सवारी का चुलबुला घोडा है। वह शक्ति रूपी रस्से से बँधा हुआ है, उसे छूट दे दो और दौड़ने दो। बाहिर जाना चाहे तो बाहिर जाने दो और भीतर रहना चाहे तो भीतर रहने दो, उसे रोकने की

कोशिश मत करो और तुम दूर खड़े हुए द्रष्टा बन उसका तमाशा देखते रहो, उसे छेड़ो मत जो करे वह करने दो, पर अपने को उससे अलग समझो। तुम देखोगे कि चन्द दिनों में ही उसकी उछल कूद कम होती जारही है और उसमें थोड़ी २ शान्ति आती जाती है। परन्तु इस क्रिया को छोड़ो मत, जब तक पूर्ण शान्ति न आ जाय। यह प्रत्याहार की एक अच्छी क्रिया है, इससे अधिकार जल्दी होजाता है।

धारणा

धारणा धारण करने या पकड़ने को कहते हैं। मन की शक्तियों को समेट के किसी एक केन्द्र पर स्थापित करना 'धारणा' है। ऐसा करते समय मन अपने स्वभावानुकूल भागता है, उसे प्रत्याहार द्वारा फिर पकड़ के लाना और निश्चय किये हुए स्थान पर ठहराना 'धारणा' कहलाती है। धारणा के लिये चाहे स्थूल में से लो और चाहे सूक्ष्म में से, एक केन्द्र लेना होगा। स्थूल केन्द्र को हम अपने स्थूल नेत्रों से देख सकते हैं, वह हमारा देखा हुआ होगा, पर सूक्ष्म केन्द्र को कल्पना से ही लिया जासकता है। जिस वस्तु को हमने देखा न हो, उसके विषय में कल्पना करनी होगी। आगे अभ्यास करते २ जितनी दृष्टि हमारी सूक्ष्म होती जायगी, उतना ही उस कल्पित की हुई वस्तु का असली रूप हमारे सन्मुख आता जायगा और एक दिन वह प्रत्यक्ष हमारे सन्मुख आजायगी। उस समय पहिले वाला रूप जो हमने अनुमान से बनाया था, छिप जायगा और वास्तविक रूप हमको

दिखाई देने लगेगा। समय लग सकता है पर जो निश्चय पूर्वक अपने प्रयत्न से जुटे रहेंगे, उनको अवश्य ही ऐसा शुभवसर मिलेगा।

आसुरी और दैवी

मन के एकाग्र करने के लिये हम अपने से बाहर की कोई वस्तु ले सकते हैं और अपने अन्तर मे भी कोई वस्तु ले सकते हैं। दोनों ही को केन्द्र बनाके हम ऐसा कर सकते हैं। पर दोनों के लाभ अलग २ होते हैं। कई लोग सूर्य या चन्द्रमा पर त्राटक करते हैं, कई दीपक की लौ पर दृष्टि ठहराते हैं, मिस्मराइजर दीवाल पर एक काला गोल दायरा बनाके उसकी ओर टकटकी लगाके देखते हैं, इत्यादि। इन सब पर मनको रोका जा सकता है और इस रोकने से मन की कुछ शक्तियाँ भी उभर आती हैं जैसे रोगी को अच्छा करना, दूसरों को बेहोश कर देना उनके विचार जान लेना, उनको अपनी ओर खींच लेना इत्यादि। परन्तु इन क्रियाओं से आत्मा को शान्ति व आनन्द नहीं मिलता। ऐसा करने वाला दुनियाँ का कीड़ा ही रहता है, राग-द्वेष-शोक-मोह सभी उसके गले में पड़े दिखाई देते रहते हैं। इसलिये शास्त्रकारों ने इन्हें 'आसुरी योग' कहा है।

दैवी योग में बाहर से वृत्तियों को समेट के अन्तर में लगाते हैं, वहाँ ही कोई केन्द्र स्थापित करते हैं। मन के लिये मन का केन्द्र ही सब से श्रेष्ट रहता है। मन हृदय देश में रहता है,

इसलिये हृदय ही सबसे उत्तम इस काम के लिये गिना जाता है। हठयोग में शरीर के बाहिरी अङ्गों की भूमिका भी बनाई जाती है, उन पर ठहराने से कुछ चमत्कारिक वस्तुऐं हमारे अनुभव में आती हैं जैसे नासिका के अग्रभाग पर धारणा करने से नाक के सामने वाली एक फुट वायु दिखाई देने लगती है। जिह्वा पर लगाने से तरह तरह के रस मुख में आने लगते हैं। कान में धारणा करने से कुछ सूक्ष्म शब्द सुनाई देने लगते हैं। नाक पर करने से गुलाब, कस्तूरी, केवड़ा इत्यादि की सुगन्ध हर समय आती रहती है, पर इससे आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। अभ्यास के लिये साधक की रुचि बढ़ सकती है पर इसका अहङ्कार भी आसकता है।

दैवी साधना अन्तर क्षेत्र में ही की जाती है, इसके लिये राजयोग में दो स्थान बताये गये हैं, एक 'पिंडी हृदय' और दूसरा भ्रूमध्य का 'आज्ञा चक्र'। राज योग ने उपासना और योग दो मार्ग अलग २ रक्खे हैं। उपासना की रास्ता पर चलने वाले हृदय में ध्यान लगाते हैं और योग मार्ग के पथिक आज्ञा चक्र को पकड़ते हैं। इन दोनों के लाभ भी अलग-अलग हैं। हृदय में धारणा करने वालों को दर्शन जल्दी मिलता है, सिद्धियाँ और करामात उसके भाग्य में नहीं आतीं। जो आज्ञा चक्र में धारणा करते हैं, उन्हें अलौकिक शक्तियाँ अपने में दिखाई देने लगती हैं, पर लक्ष्य तक पहुँचने में समय लग सकता है, सिद्धियों से अह-

ध्यान और समाधि

धारणा की गहरी अवस्था जिसमें लक्ष्य के अतिरिक्त बाहिरी विषयों का ज्ञान न रहे, 'ध्यान' कहलाता है और ध्यान घनी अवस्था जिसमें अपना भी ज्ञान न रहे, लक्ष्य का भी ज्ञान न रहे-'समाधि' बोली जाती है। यह प्रथम समाधि है जो 'जड़ समाधि' कहलाती, है। आगे चैतन्य समाधियाँ आती हैं, जिनमें ज्ञान के साथ अज्ञान और अज्ञान के साथ ज्ञान रहता है। उनका वर्णन करने से लेख बढ़ सकता है इसलिये इनको यहाँ ही छोड़ते हैं।

यह ऐसी जड़ समाधि मनोमय कोष के अंत में आती है, उपनिषदों ने इसे सुषुप्ति समाधि का नाम दिया है। यहाँ पहुँच कर मन बिलकुल शान्त हो जाता है और मन के शान्त होते ही इन्द्रियाँ और बुद्धि भी शान्त हो जाती हैं और साधक तत्त्वज्ञान का एवं साक्षात्कार का अधिकारी बनता है। यह साधन का अंत है और सिद्धि का आरम्भ है। आगे बुद्धि योग का नम्बर आता है, ब्रह्मज्ञान व ब्रह्मविद्या इतना हो चुकने के पश्चात् साधकों को मिलती है।

विभूतियाँ

ऐसी समाधि तक पहुँचते ही साधकों के अन्दर अलौकिक शक्तियों का अनुभव हो जाता है मन की अनेकों सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत हो साधक के सन्मुख आती हैं, जिनके द्वारा वह संसार व परमार्थ के अलौकिक काम कर सकता है। सूर्य पर संयम करने से जगत का ज्ञान होता है, पृथ्वी में संयमी दृष्टि से देखने

पर 'पृथ्वी के तह में क्या भरा है इसका ज्ञान होता है, वायु में संयम से वायु का, मनुष्य में संयम करने से मनुष्य के विचारों का और अपने में संयम करने से अपने अन्दर की कलाओं का ज्ञान होता है, इत्यादि। पर इसके साथ महर्षि यह भी उपदेश देते हैं कि इन विभूतियों को भौतिक पदार्थों की ओर जो साधक झुका देता है, वह प्रभु से विमुख होके माया के झूठे खेल में उलझ जाता है। साधक स्थूल माया से ऊपर उठके सूक्ष्म माया के जाल में फँस जाता है, इसलिये इनकी ओर आँख उठाके भी न देखना और उनसे कोई काम न लेना साधकों के लिये हितकर होता है। वह बताते हैं, "ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः।" अर्थ —यह विभूतियाँ योग के लिये विघ्न व अड़चनें हैं। यह रास्ते की चीज़ हैं, जो योगी इनमें फँस गया उसकी आत्म उन्नति असम्भव है।

यह हमने योग विद्या के जन्म का इतिहास बताया, आगे दूसरे आचार्यों ने इसमें क्या क्या परिवर्तन किये, इसे बताते हैं।

हठयोग

हठ योग के मुख्याचार्य्य श्री शिवजी कहे जाते हैं, हठयोग पर 'शिव संहिता' और 'घेरेण्ड संहिता' नाम की दो पुस्तकें प्राचीन मानी जाती हैं, पर इसका प्रचार भी गोरखनाथ जी के समय से अधिक हुआ। गुरु गोरखनाथ जी के गुरु श्री मत्स्येन्द्रनाथ बौद्ध धर्म के मानने वाले थे और बड़े सिद्ध थे। पुरानी परिपाटी के अनुसार गृहस्थ और वानप्रस्थ के पश्चात् संन्यस्त का नम्बर

आता था, पर श्री बुद्धदेव ने बिना गृहस्थी भोगे ही संन्यस्त दीक्षा देना आरम्भ कर दिया। लाखों स्त्री-पुरुष त्याग का उपदेश ले भिक्षुक और भिक्षुकाओं के गिरोह में शामिल हो गये। निठल्ले रहने से इनमें भ्रष्टाचार फैल गया और इनका पतन होने लगा। बौद्धों की इस शैली को प्रथम जैनियों ने, पीछे स्वामी शङ्कराचार्य्य जी ने भी अपनाया। सम्भव है कि बौद्धों को परास्त करने के लिये उनको ऐसा करना पड़ा हो। बौद्ध और जैन धर्म आत्मवाद का मानने वाला था। ईश्वर के अस्तित्व और हिन्दुओं के वेदों को यह धर्म नहीं मानते, इसलिये स्वामी शङ्कराचार्य्य को अद्वैत का हथियार हाथ में लेना पड़ा और आत्मा को नहीं बल्कि सारी प्रकृति को ही परमात्मरूप में दर्शाना पड़ा।

संन्यस्त धर्म का निभाना बड़ा ही कठिन है, मन के लिये जब तक कोई काम न हो वह नीचे को ढकेलता है इन विरक्तों के पतन का यही कारण बना बिना कामके मनकी रजोगुणी व तमोगुणी शक्तियों ने इनको गिराना शुरू कर दिया। इनके बचाव के लिये श्री गुरू गोरखनाथ ने हठ की क्रियाओं का प्रचार आरम्भ किया। नेती-धोती बस्ती इत्यादि षट् कर्म, आसन मुद्राएँ प्राणायाममें इनको अटकाया। कुँडलिनी शक्ति का वर्णन ऐसे गहन शब्दों में किया कि इन सब के दिमाग चक्कर में पड़ गये। इसका परिणाम यह निकला कि गृहस्थ योग के नाम से घबड़ाने लगे। गृहस्थों को यह भ्रम होगया कि जब तक लंगोटी लगाके और गृहस्थि त्याग के इन कर्मों को न ठीक किया जाय परमात्मा तक नहीं पहुँचा

जा सकता। योग और योग-साधन अलग-अलग चीजें हैं, एक ध्येय है और दूसरी ध्येय तक पहुंचने की क्रियाएँ हैं, पर सर्व साधारण यौगिक क्रियाओं को ही योग समझने लगे। यदि किसी ने दो-चार आसनों का अभ्यास कर लिया, अथवा प्राणायाम की दो एक विधियों को थोड़ा बहुत जान लिया, तो वह अपने को योगिराज समझने लगा और इसी नाम से ससार में उसकी प्रसिद्धि हो गई। परिणाम यह निकला कि योग विद्या गृहस्थों से ही नहीं बल्कि इन विरक्त साधुओं में से भी लोप होगई। यह सब योगी कहलाने वाले विरक्त अहंकार के वशी भूत हो सिद्धियों और करामातों के चक्कर में पड़ गये और संसारी ही रहे।

भक्ति मार्ग

महर्षि पातञ्जलि के पश्चात् और गुरु गोरखनाथ से पूर्व एक और योग की शिक्षा भी भगवान् कृष्ण की ओर से आई, जिसमें 'साम्य योग' का वर्णन था, जो कर्म भक्ति और ज्ञान की मिलौनी से जीव को उस स्थान तक ले जाना चाहती थी कि जहाँ उसके कर्तापन के अभिमान का नाश होना था और एक परमशक्ति के आधीन सारा विश्व घूम रहा है इसका ज्ञान होता था, पर उसका प्रचार अधिक नहीं बढ़ा। यह देख श्री स्वामी रामानुजाचार्य ने 'भक्ति योग' की ओर लोगों को झुकाया। भक्ति मार्ग में किसी क्रिया की आवश्यकता नहीं है, केवल हृदय में उस प्यारे के लिये श्रद्धा होना और उसकी सुधि रखना ही

सब कुछ प्राप्त करा देता है। अब गृहस्थों में भी हिम्मत आई और भक्ति के साधनों में लग पड़े। स्वामी निम्बकाचार्य, माधवाचार्य और श्री वल्लभाचार्यजी इनको और भी सरल करते गये, पर अन्त में वैष्णव सम्प्रदाय भी रूढ़ियों में फँस गया, दिखावा रह गया और असली चीज को इन्होंने हाथ में खो दिया।

शब्द मार्ग

वैष्णव योगियों की दशा सुधारने और गृहस्थों को सत् पथ दिखाने के लिये एक और महान् आत्मा आई जो 'कबीर' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इन्होंने भक्ति व योग के दोनों सिद्धान्तों में से थोड़ा २ सा लेकर निर्गुण ब्रह्म की उपासना की शिक्षा दी और मन को ठहराने के लिये अन्तर के शब्दों का अवलम्बन लिया। यह सन्त मत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस संत मत में श्रीनानक साहब, दादूदयाल, मीरा, पलटू साहब इत्यादि अनेकों सन्त हुए जो शब्द योगकी शिक्षा देते आये। अन्त में श्री राधास्वामी साहब हुए जिन्होंने पुराने तरीकों में थोड़ी तरमीम करके अपने एक नवीन मत की बुनियाद डाली, जो 'राधास्वामी मत' के नाम से प्रसिद्ध है, और संतमत की एक शाख है। यह सब शब्द योगी ही थे।

इस प्रकार देश-काल और वस्तु पर विचार करके समयानुसार इस योगविद्या में नये-नये अन्वेषण होते आये। इसके आचार्य पुरानी रस्मों को तरमीम कर उनमें थोड़ी-थोड़ी सरलता देते आये। सिद्धान्त एक ही रहा, उद्देश्य भी एक ही रहा, पर उस

उद्देश्य तक पहुँचने और उसे प्राप्त करने के जो साधन थे उनमें भिन्नता होती गई। इस प्रकार उस एक ही (आत्म) देश तक पहुँचने के अनेकों रास्ते हो गये, और अनेकों सम्प्रदाय (गिरोह) बन गये। यह सारे रास्ते एक ही स्थान की ओर मायर को ले जाने वाले हैं, परन्तु कुछ लम्बे देर में पहुँचाने वाले नदी-नालों और गड्ड के हैं और कोई जल्दी पहुंचाने वाले सुगम हैं।

अब और भी

हमने अपने जीवन में देखा कि अब से चालीस या पचास वर्ष पहिले जो सुभीते थे, वह आज देखने को भी नहीं हैं। वह खाना-पीना, वह बेफिक्री, वह सीधापन, वह बल, वह आचार और स्वभाव, आज दुनियाँ में ढूंढने पर भी दिखाई नहीं देता, तो सहस्रों वर्ष पूर्व की बात कौन कहे, न जाने वह समय कितना अच्छा होगा, कितने निर्मल हृदय उन पूर्वजों के होंगे, कितना बल और पौरुष उस युग के मनुष्यों में होगा। जिन कठिनाइयों को वह सह सके थे, आज हम उनका नाम सुनते ही काँप जाते हैं, आँख उठा के भी ऊपर को नहीं देखना चाहते। कारण यह है कि हमारे अन्दर न बल है और न हमारा तपस्वी जीवन है। निर्बलता और विलासता ने हमको घेर रक्खा है और दिन पर दिन हमारी शक्तियों का, हमारे बल व पौरुष का ह्रास होता चला आ रहा है। चिन्ताओं ने ग्रस रक्खा है, आचरणहीन होते चले जारहे हैं। न ब्रह्मचर्य है, न भोजन के लिये शक्तिवर्धक पदार्थ हैं। ऐसी दशा में यह पुरानी क्रियायें हमारे लिये कैसे

उपयोगी हो सकती हैं, उन्हे कर नहीं सकते, उनके योग्य हम नहीं रहे।

एक महान् आत्मा

हमारी इस दीन दशा पर उस विश्वपति के दया भण्डार में क्षोभ आया, उसने हमारे उद्धार के लिये अपने दिव्य देश से एक महान् आत्मा को भेजा, जिसने हम कलियुगी जीवों के लिये एक ऐसा अत्यन्त सहल और अत्यन्त सुगम मार्ग दिखाया कि जिसमें न तो घर-बार छोड़ने की आवश्यकता है, न अपने कारोबार त्यागने की जरूरत है। निर्बल और सबल, वृद्ध और युवा, स्त्री और पुरुष सभी इसको बड़ी आसानी से कर सकते हैं। अभ्यास के लिये पन्द्रह या बीस मिनट सुबह व शाम देने से वह सारी अवस्थायें साधक बड़ी जल्दी प्राप्त कर लेता है कि जो कठिन तप व कठिन परिश्रम करने वालों को वर्षों में भी नहीं मिल पातीं। गृहस्थी भोगता हुआ भी मनुष्य इन पर चलके अति शीघ्र दर्शन का अधिकारी अपने को बना लेता है, आत्म देश तक पहुंच साक्षात्कार कर लेता है। यह प्रवृत्ति में निवृत्ति और निवृत्ति में प्रवृत्ति का मार्ग है।

इसमें न आसन है, न प्राणायाम है, न जप है और न तप है, न शब्द योग है, न राज योग न हठ योग है। भक्ति मार्गी भी इस पर चल सकता है, योगी व ज्ञानी भी इसको अपना सकता है। इसमें किसी के विश्वास को धक्का नहीं पहुँचाया जाता,

उसका वह कर्म जिसे वह करता चला आरहा है, उससे छुड़ाया नहीं जाता, उसमें ही उसे आगे बढ़ा दिया जाता है।

विशेषता

यह सभी कहते चले आरहे हैं कि ईश्वर का निवास मनुष्य के हृदय में है। वह बाहर भी है परन्तु यह समष्टि ईश्वर इतना बड़ा है कि मनुष्य की पकड़ में नहीं आ सकता, इसलिये शास्त्रों ने यह शिक्षा दी है कि उसे अपने अन्दर ही खोजो, जो तुम्हारे अत्यन्त समीप और छोटी शकल में है, उसे ही पकड़ने की कोशिश करो। बात ठीक है, हम जब ऐसा करने को तैयार होते हैं तो पहिली मुठभेड़ हमारी मन से होती है। इस मनरूपी भौंरे की आदत कुछ ऐसी बन गयी है कि वह अपने घर में बैठना पसन्द ही नहीं करता, सदैव बाहर को भागता है, और विषय वासना रूपी कलियों का रस लेने को हर समय लालायित रहता है। इसके स्वभाव में चंचलता भी इतनी आगई है कि क्षण मात्र को भी एक स्थान पर नहीं टिकता। अभी एक फूल पर बैठा दिखाई दे रहा था, उसे छोड़ झट दूसरे पर जा पहुँचा, फिर तीसरे को पकड़ा इत्यादि। इसके इस चंचल और बहिर्मुखी स्वभाव को छुड़ाना और उसे अन्तर्मुखी बनाना यह इस योग साधना का पहला काम होता है।

इस इतने ही काम के लिये मनुष्य न जाने क्या-क्या करता है। परिवार को त्याग पर्वतों की गुफाओं में जाकर रहता है, कठिन २ तप करता है, उपवास कर करके शरीर को सुखाता है,

आसन और प्राणायाम में परिश्रम करता है इत्यादि, पर यह हाथ नहीं आता, इस पर अधिकार नहीं हो पाता।

यह काम हमारे यहाँ इतनी सुगमता से हो जाता है कि जिसको सुनकर लोगों को आश्चर्य हो सकता है। प्रथम बैठक से ही साधक अनुभव करने लगता है कि उसका मन किसी शक्ति द्वारा जकड़ दिया गया है, उसका वेग और उसकी चंचलता नष्ट हो गई है और वह हमारे कार्य में कोई विघ्न नहीं डाल रहा। नित्य-प्रति के अभ्यास से यह अवस्था और बढ़ती जाती है और थोड़े ही काल में वह समाधि का आनन्द लूटने लगता है।

इस साधना के लिये जिज्ञासु को दो-एक बेर गुरु या शिक्षक के सन्मुख बैठ के अपनी क्रिया करनी होती है। गुरु अपनी आत्मशक्ति शिष्य में प्रवेश करता है और अपने उसी आत्मबल से शिष्य को सहायता पहुँचा कर उसके चंचल मन को स्थिर कर देता है। आगे उसी बताई हुई क्रिया द्वारा शिष्य स्वयं अभ्यास करता रहता है और बढ़ता रहता है। जब कभी फिर उसकी चंचलता बढ़ जाती है और साधक के काबू से बाहर हो जाती है तो गुरू फिर सहायता पहुँचा देता है। इस दूसरी बेर यह भी जरूरी नहीं है कि साधक को गुरु के सन्मुख ही पहुँचना पड़े, वह कितनी ही दूर क्यों न हो, वहीं गुरु शक्ति पहुँच कर उसी क्षण उसे सहायता देती है और शान्ति का अनुभव कराती है। यह एक विशेषता हमारे यहाँ की शैली में है। इसका प्रसाद हम लोगों को अपने श्री गुरुदेव से मिला है, दूसरी जगह यह

सुगमता और यह ऐसी सहायता की झलक भी देखने को नहीं मिलती।

इस सुगमता का परिणाम यह निकला है कि वह शिक्षित समुदाय जो नवीन फ़िलासफ़ी और साइंस को पढ़के नास्तिक बन गया था, जिनके लिये यौगिक क्रियाएँ और ईश्वर एक ढकोसला था वह सहस्रों की तादाद में इधर को झुक पड़े हैं और साधना में लग गये हैं। उनके विचार बदल गये हैं और उनके कर्म बदल गये हैं। वह ईश्वर पर श्रद्धा ले आये हैं, और जीवन के लिये इस ब्रह्म विद्या को भी जरूरी समझ इसकी प्राप्ति में जुट पड़े हैं।

गुरु और शिष्य

शिक्षित समाज को गुरु और शिष्य शब्द से भी घृणा हो रही थी, इसका कारण गुरुओं की धन लोलुपता और शिष्यों से सेवा लेना था। गुरु लोग शिष्यों को अपना गुलाम समझने लगे थे, और हर तरह की ख़िदमत लेने में संकोच नहीं करते थे। दीक्षा देते समय ही कुछ न कुछ सम्पत्ति उनकी समेट ही लेते थे। हमारे गुरुदेव ने इस रस्म को भी तोड़ दिया। उनकी शिक्षा यह थी कि 'न कोई गुरु है न कोई चेला है, सब बराबर हैं, सभी मित्र और भ्राता हैं।' इसी भाव से शिक्षा देने का प्रबन्ध अभी तो हमारे सत्सङ्ग में चला जा रहा है, आगे भगवान् जानें। सेवा लेना भी वह बुरा समझते थे, वह कहते थे कि "दूसरों की निष्काम भाव से सेवा करो, जो नहीं जानता, उसे रास्ता दिखाओ, जो विद्या लेना चाहता हो, उसे विद्या दान करो, पर

बदले में कुछ लेने की इच्छा मत करो।" उनके उपदेश में यह शब्द आते थे कि गुरु और शिष्य के भाव म द्वैत (गैरियत) रहता है, सबको अपना समझो, वह सब तुम्हारे हो जायँ और तुम उनके हो जाओ। भेद भाव को मिटा देना ही 'प्रेम' है और ऐसा प्रेम ही ईश्वर का रूप है। इस नवीनता को भी उन्होंने ही जन्म दिया, वरना गुरु शिष्य की परिपाटी या रिवाज ऋषि काल से चला आरहा था। उन दिनों अच्छा रहा होगा, पर आजकल तो साधु-सन्तों ने इसका पेशा कर लिया है।

मल और आवरण

दूसरा काम जो साधना मे करना पड़ता है वह मल और आवरणों से हृदय को शुद्ध करना है। ऊपर जो बात मन पर अधिकार करने की कही गई है उससे 'विक्षेप' दूर होता है। विक्षेप के हट जाने पर भी मल और आवरण अन्तःकरण पर छाए रहते हैं जिनके कारण आत्मा का प्रकाश अन्दर छिप जाता है और अन्धकार छा जाता है। इस अन्धकार के कारण ही जीव अशान्त और दुःखी रहता है, इसलिये भगवद् दर्शन के लिये, इन मल और आवरणों के हटाने की आवश्यकता है। जितने यह दूर होते जाते हैं उतना ही जीव ईश्वर के समीप पहुँचता जाता है, उसे आनन्द व प्रकाश की झलक मिलती जाती है।

जप तप, प्राणायाम, ध्यान आदि जितनी भी यौगिक पद्धतियाँ प्रचलित हैं वह सब इसी एक काम को करती हैं। जिन अच्छे और बुरे कामों को हम अपने इस जीवन में या पिछले जीवनों

में करते आये हैं वही बीज रूप से सूक्ष्म रूप से इसके अन्दर भर गये हैं, इन्हीं का नाम 'संस्कार' है। इन संस्कारों का ढेर जब तक नहीं हटेगा, यह दग्ध नहीं कर दिये जायेंगे, तब तक दर्शन नहीं हो सकता, यह सिद्धान्त है।

हमारे यहाँ इस काम को भी बड़ी आसानी से कर दिया जाता है। शिक्षा देने वाला पुरुष, साधक के अन्तःकरण पर अपने आत्मा का प्रकाश फैंकता है, उसके द्वारा उसके अन्धकार को दूर हटाता है। प्रकाश में ज्ञान और आनन्द है। देखते देखते ही शिष्य अपनी सारी तपन परे हटा आनन्द में विभोर हो जाता है, शान्ति के समुद्र में तैरने लगता है। इस अवस्था का आरम्भ भी प्रथम दिवस से ही होने लगता है। जो योगियों को पचासों वर्षों में नहीं मिल पाती वह यहाँ पहिले दिन से ही अनुभव में आ जाती है, यह हमारे यहाँ की दूसरी देन है।

धीरे-धीरे गुरु अपनी शक्ति से इसके मल व आवरण को भी हटा के फैंक देता है परन्तु इसमें कुछ समय लगाया जाता है, जल्दी करने में शिष्य को हानि हो सकती है। हाँ जिनका क्षेत्र तैयार मिलता है उनके लिये देर नहीं की जाती, अति शीघ्र प्रभु के दरबार तक उन्हें पहुँचा दिया जाता है।

यह सब विशेषतायें हमारे यहाँ की हैं जिनमें न समय लगता है और न परिश्रम करना पड़ता है। गुरु के आश्रय हो बैठ जाना शिष्य का कर्त्तव्य होता है, आगे सब गुरु अपनी जिम्मेदारी पर करता है। इसमें शिष्य दृष्टा रहता है और स

कर्त्ता रहता है हमारी समझ में नहीं आता कि इस योग का क्या नाम रक्खा जाय। चूंकि इसमें गुरू के आश्रय होना पड़ता है इसलिये इसको 'समर्पण योग' कह सकते हैं। और इसमें व्यवहार में परमार्थ और परमार्थ में व्यवहार की कमाई करते हुए दोनों को एक समरेखा पर लाना होता है, इसलिये इसको 'साम्य योग' भी बोला जा सकता है। यह गीता का प्रैक्टीकल साधन है। पढ़ लेना, पाठ कर लेना और उसे समझ लेना और बात है और उसको प्रेक्टिस में लाना, उसकी शिक्षाओं के अनुसार अपने जीवन को ढालना दूसरी बात है। हमारे यहाँ की शिक्षा स्वभाव को बदलती और प्रेममय जीवन बनाती है।

मिस्मेरेज़म् और योग विद्या

यूरोप और अमरीका के विद्वानों ने जहाँ ससार को चकाचौंध मे डालने वाले अनेक प्रकार के आविष्कार किये हैं वहा एक और भी साइन्स की तहकीकात की है कि जिसको "मिस्मेरेज़म" कहते हैं। इस इल्म से मनुष्य केवल अपनी मानसिक कल्पना के द्वारा ही बड़े २ चमत्कार और करिश्मे दिखा सकता है, रोगियों को अच्छा करना, गुप्त भेदों को बता देना, बन्द चिट्ठियों को पढ़ लेना, साप, बिच्छू वगैरह के जहर का असर दूर कर देना, दूर देशों के मित्रों के पास एक सेकेन्ड म कोई खबर भेज देना और उसका उत्तर मगा लेना, इत्यादि यह इन लोगों के बाये हाथ का खेल होता है। अमेरिका, जर्मन, फ्रास, इङ्गलेंड इत्यादि देशों में इसके बाकायदा स्कूल खुले हुये हैं जिनमें सहस्रों स्त्री और पुरुष इसकी शिक्षा पा रहे हैं। यह लोग अपनी मानसिक शक्ति बढ़ा कर इसके द्वारा अनेक प्रकार के प्रयोग किया करते हैं और उनको अपनी पत्रिकाओं में प्रकाशित किया करते हैं।

पश्चिमीय देशों से जहाजों पर सवार हो यह नवीन साइन्स भारत वर्ष की ओर भी आई और बम्बई, कलकत्ता तथा मदरास के बन्दरगाहों पर उतरी। यहाँ की पढ़ी लिखी जनता ने नव वधू की तरह इसका अपूर्व स्वागत किया और उसको एक अद्भुत वस्तु समझा। अनेक लोग उसकी सुन्दरताई पर मुग्ध हो उसकी ओर खिच गये और उसी के हो रहे। थोड़े ही दिनों में यहा के कई

स्थानों पर उसके बड़े २ सेन्टर खुल गये कि जहां पर बिना औषधियों के रोगियों का इलाज होने लगा। रोजगारी लोगों ने थ्येटर वा नाटक के रूप में इसके खेल दिखा २ कर रुपया बटोरना शुरू कर दिया। इस प्रकार इसका प्रचार ऋषियों के देश भारत में भी हो गया।

भारत हमेशा से सत् प्रधान देश रहा है। यहाँ की पवित्र उर्वरा भूमि ऐसे लालों को उगलती रही है कि जिनका झुकाव किसी न किसी रूप में अब भी आत्मा वा परमात्मा की ओर रहा है। प्रकृति वाद, जड़वाद अथवा भौतिक वाद को उन्होंने न कभी पसंद किया और न इसके लिये उनके दिल में जगह है इसलिये यहां के मिस्मेरिस्टों ने यह कहना आरम्भ कर दिया कि यह इल्म प्रकृतिवाद नहीं है बल्कि आत्म वाद है। मिस्मेरेजिम् साइन्स नहीं—फिलासोफी है और योग विद्या का एक अंग है।

उनके इन शब्दों ने अध्यात्म विद्या के अनेक जिज्ञासुओं को धोखे में डाल दिया और वह बेचारे आत्म साक्षात्कार की लालसा से मिस्मेरेजम के साधनों में जुट पड़े और अपना समय नष्ट करने लगे। ऐसे लोगों के इस भ्रम को दूर करने के लिये ही आज हमने इस लेख को लिखा है। अति संक्षेप में हम, आज यह बताना चाहते हैं कि मिस्मेरेजम और योग में क्या अन्तर है और मिस्मेरेजम हमको कहाँ लेजाता है और योग के द्वारा हमको क्या फल मिलता है।

मिस्मेरेजम का इतिहास

सम्भव है कि हमारे बहुत से प्रेमी ऐसे हों कि जिन्होंने मिस्मेरेजम् का नाम तो सुना हो परन्तु अभी तक यह बात वह न जानते हों कि मिस्मेरेजम् का जन्म कहां और कैसे हुआ और क्या २ साधन इसमें किये जाते हैं। इस लिये पहले थोड़ा सा इसका इतिहास बता देना उचित होगा पीछे इन दोनों क्रियाओं भेद बतलायेंगे।

जिस क्रिया को यहां वाले जादू, टोना, तन्त्र मन्त्र और झाड़-फूंक इत्यादि कहते हैं योरुप वाले उसी को मिस्मेरेजम् कहते हैं। योरुप में सबसे प्रथम इसका प्रचार डा० मिस्मर साहब ने किया था इस लिये उन्हीं के नाम पर उस इल्म को वहां वाले मिस्मेरेजम् कहने लगे। डा० मिस्मर साहब का जन्म आस्ट्रिया देश के कस्बा इस्टेन Estain में जो कि राइन नदी के तीर पर है ५ मई सन् १७३४ ई० को हुआ था। बड़े होने पर वाइना Vienna में जाकर इन्हों ने डाक्टरी शिक्षा प्राप्त की। उन्हीं दिनों इनकी मुलाकात फादर हिल Father Hill नाम के पादरी से हुई। यह पादरी साहब कुछ २ इस विद्या को जानते थे। उनसे इन्होंने इसके कुछ साधन सीखे जो कि ऐनीमिल मैग्नेटिज़म (आकर्षण हैवानी) से सम्बन्ध रखने वाले थे। सन् १७५० ई० से मिस्मर साहब इसकी ओर अधिक ध्यान देने लगे और नई २ इसकी तहक़ीक़ात करने लगे। ऐसा करने पर उनको कई प्रकार के नये २

तजुर्बे हुये, अनेक प्रकार के असाध्य रोगों के दूर करने में उनको सफलता प्राप्त हुई। इस लिये इन्होंने इस नवीन साइन्स के प्रचार का इरादा कर लिया और अपने देश को त्याग रूस, जर्मन और स्वीटजरलैंड की ओर अपना कदम बढ़ाया। वहां के बादशाहों ने इनका स्वागत किया और अपनेर देशों में इस प्रकार के शफाखाने खुलवाये कि जिन में बिना दवा के केवल इन्हीं के सिद्धान्तों पर इलाज होता था। इतना काम करने के पश्चात सन् १७७८ ई० में यह फ्रांस के 'पेरिस' नगर में पधारे वहां इन्होंने ऐसे २ चमत्कार दिखलाये कि पेरिस की जनता इनको दूसरा मसीहा मानने लगी। यहा पर इन्होंने एक सुसाइटी की स्थापना की कि जिसका उद्देश्य केवल इस विद्या का प्रचार करना था। इस सुसाइटी के मेम्बरों ने इसका नाम मिस्मेरेज्म रक्खा।

यह कहना तो गलत है कि इस विद्या के उत्पत्ति कर्त्ता मिस्मर साहब थे क्योंकि उनसे भी लाखों वर्ष पहिले इसका प्रचार हिन्दोस्तान, मिश्र और यूनान इत्यादि देशों में बहुत कुछ था। लेकिन इस बात के लिये किसी को इन्कार नहीं हो सकता कि मिस्मर साहब ने साइन्स्टीफिक तरीके पर इसकी जांच-पड़ताल करके योरुप देश में इसको रिवाज दिया। मिस्मर साहब के पश्चात् दूसरे विद्वानों ने और भी इसमें नवीन २ आविष्कार किये। बरलिन, सेन्टपीटर्सबर्ग, वाइना, कोपनहेगन इत्यादि स्थानों में इसके सेन्टर स्थापित हो गये और यहाँ के लोगों ने

इस गुप्त विद्या को इतनी उन्नति दी कि इसको भी यूरुप वालों की साइन्स में एक स्थान मिल गया।

इन देशों से घूमती-घामती अन्त में यह विद्या इङ्गलैंयड पहुंची। सन् १८४० ई० के समाचार पत्रों ने इसकी प्रशंसा करने के लिये अपने कालम के कालम रिजर्व कर दिये। चारों ओर शोर मच गया। डाक्टरों का ध्यान भी इस ओर झुकने लगा और अन्त में लण्डन यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर डाक्टर इलस्टन साहब के उद्योग से लण्डन में भी चन्दा करके इसका शफाखाना खोला गया। सन् १८५१ में एक फ्रांसीसी डाक्टर इङ्गलैण्ड पहुँचे। उन्होंने हर जगह घूम २ कर इस पर व्याख्यान दिये और खूब ही इसका प्रचार किया।

हिप्नाटिज्म

मैनचेस्टर नगर में उन दिनों एक बड़े प्रसिद्ध डाक्टर थे जिनका नाम 'ब्रैड' था। इन्होंने पुराने उसूलों में कुछ तरमीम की और इस अपनी नवीन थ्योरी को हिप्नाइज्म Hipnoism के नाम से प्रसिद्ध किया। डाक्टर ब्रैड ने सन् १८४३ ई० में इस पर एक पुस्तक लिख कर प्रकाशित की जिसका नाम 'न्योरीहिप्नालोजी Neory Hipnologl" अर्थात् (मस्तिष्कनिद्रा के सिद्धांत) रक्खा। इस किताब ने एक दम लोगों का ध्यान इस ओर खींच लिया और वहां के बड़े २ साइन्सदां इसके सहायक बन गये। इसी तरह बढ़ते २ स्काटलैण्ड इत्यादि देशों में भी इसका प्रचार हो गया।

हिन्दोस्तान

धीरे २ हिन्दोस्तान की भी बारी आई। सन् १८३५ ई० में 'डाक्टर अजडेले' Dr. Azdalay साहब ने कलकत्ते के सिविल हास्पटिल में नये २ तजुर्बे इसके द्वारा किये। कई सर्जीकल आपरेशन (चीर-फाड़) इसके द्वारा मरीजों को बेहोश करके किये गये जिनमें अपूर्व सफलता उनको प्राप्त हुई। गवर्नमेण्ट ने एक तहकीकाती कमीशन इसकी जांच करने के लिये नियत किया जिसमें नौ मेम्बर और एक सम्वाददाता था। कमीशन ने अपना फैसला मिस्मरेजम के मुआफ़िक़ दिया और उसका यह असर हुआ कि कलकत्ते में भी गवर्नमेण्ट की ओर से इस प्रकार के इलाज का एक शफ़ाखाना खोल दिया गया और मेडीकिल कालेज के तमाम विद्यार्थियों के लिये यह लाज़िमी compulsory करार दिया गया कि यह छैमास तक मिस्मरेजम का कोर्स सीखें।

डा० मिस्मर साहब इस इल्म में जहां तक पहुँच पाये थे यह यह था कि हर बड़े जानदार से एक प्रकार की चुम्बकीय शक्ति होती है कि जिसके द्वारा वह दूसरों को प्रभावित कर सकता है और, उनके कष्टों को दूर कर सकता है और इसका नाम उन्होंने Animal magnetism रक्खा था। परन्तु बाद को दूसरे साइन्सिस्ट इसमें और भी आगे बढ़ गये। मशहूर हिप्नाटिस्ट "लेवाल्ट" ने यह तहक़ीकात की हर बड़े जानदार ही में नहीं बल्कि छोटे से छोटे प्रत्येक प्राणी में यह शक्ति रहती है और इसको वह "ज़ूमेग्नेटिज्म" के नाम से पुकारने लगे। उनके

पश्चात् 'पारीरिगन' साहब अपनी खोज में इस नतीजे पर पहुचे कि यह चुम्बकीय शक्ति एक प्रकार की पतली और ऐसी सूक्ष्म द्रव्य है कि जो बहुत जल्द एक स्थान से निकल कर दूसरे स्थान में चली जाती है और यह जानवरों ही में नहीं वरन् संसार के हर एक पदार्थ में मौजूद है इसी लिये वह इसको मैग्नेटिक फ्लुइड magnetic fluid कहने लगे। इसी प्रकार मिस्टर जेनवेज और मिस्टर वार्डिक इत्यादि ने भी अपनी २ सम्मितियाँ प्रगट की और इसको थोड़ा आगे बढ़ाया।

हीरा और सुवर्ण

इन प्रसिद्धि मिस्मरिस्ट डा० वार्डिक ने जो नई बात पश्चिमीय जगत को बताई वह यह थी कि जिन वस्तुओं के परिमाणु अधिक घने होते हैं वह अपने अन्दर से इस प्रकार की किरणें फेंकती हैं कि जो मनुष्य की शारीरिक और मानसिक स्थिति के लिये लाभदायक होती हैं। उनमें एक ऐसी आकर्षण शक्ति होती है कि जिसका बहुत कुछ सम्बन्ध शरीर और मन से रहता है। जवाहिरात में से हीरा अधिक गुणकारी है क्योंकि उसके परिमाणु इतने घने होते हैं और ऐसे आपस में चुपटे होते हैं कि जो लोहे के हथौड़ों से भी नहीं टूटते और इसी लिये उसका मूल्य सबसे अधिक होता है।

धातुओं में सुवर्ण में यह बात पाई जाती है उसके बाद चाँदी का नम्बर है। इन वस्तुओं को शरीर

उनकी रगड़ शरीर पर लगने से मनुष्य अनेक प्रकार के रोगों से अपने को बचा सकता है। भारतवर्ष के लोग लाखों वर्ष पहिले से इस साइन्स को जानते थे इसी लिये उनके यहां सोने-चांदी तथा जवाहिरात के गहने पहिनने का रिवाज चला आता है। योरुप वालों ने डा० वार्डिक के जमाने मे इन चीजों के महत्व को समझा है और इसी लिये वह लोग भी अब जेवर पहिनने लगे हैं।

इसी प्रकार हमेशा नये २ आविष्कार होते आये। बीसवीं सदी में 'मेडेम् क्यूरी' ने एक अद्भुत धातु का पता चलाया है कि जिसको "रैडियम" कहते हैं। रैडियम के परिमाणु सुवर्ण से भी अधिक चुपटे होते हैं, आजकल इस पर खूब ही खोज की जा रही है अनेक साइन्स की बड़ी २ सुसाटियाँ इसके गुणों के दरियाफ्त करने में लगी हुई हैं। अब तक जो पता चला है उससे यह बात साबित हो चुकी है कि रैडियम धातु से एक प्रकार की अदृश्य किरणें निकलती हैं जो दूसरी वस्तु पर पड़ते ही उसके गुणों को बदल देती हैं। मनुष्य के ऊपर गिरने से उसके भावों को परिवर्तन कर डालती हैं। इसलिये रैडियम का मूल्य बाजार में बहुत ही ऊँचा है क्योंकि अभी ऐसी आशा की जा रही है कि यह धातु मनुष्यों के लिये उपयोगी कोई वस्तु है। इसी प्रकार चुम्बकादि पत्थरों का हाल है।

इसी जमाने में एक और डा० वैकोइन हुये। उन्होंने यह बतलाया कि यह शक्ति शरीर के ज्ञान तन्तुओं में से निकलती

हैं जिन को अङ्गरेजी मे नर्वज (Nerv s) कहते हैं। नर्वज एक प्रकार की नाडियाँ हैं जो जाल की तरह सारे शरीर में फैली हुई हैं। जिनका सैन्टर दिमाग में है वहा से रीढ की हड्डी में होती हुई शरीर के प्रत्येक भाग में चली गई हैं। इनके द्वारा ही शरीर का प्रबन्ध होता है। योग मे जिन नाडियों के शोधन का वर्णन आता है यह रक्तवहा वा वायुवहा नाडियाँ नहीं हैं, यही ज्ञान तन्तु हैं इन्हीं मे से इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना हैं। षट् चक्रों को भी यही नाडियां बनाती हैं और यह चक्र पीठ रीढ मे हैं। उपरोक्त डाक्टर साहब ने यह तहकीकात की कि जिन लोगों के यह पट्ठे ताकतवर होते हैं उनमें मैग्नेटिक पावर जियादा होती है और जिनके निर्बल होते हैं उनमें कम होती है। ब्रह्मचर्य्य पालन करने वालों मे यह ताकत बढ जाती है। उन्होंने यह भी मालूम किया कि आत्मविद्या (इल्म रूहानी) के साधन करने वालों की यह शक्ति बहुत बढ जाती है चाहे वह शरीर से दुबला-पतला ही क्यों न हो। उसके शरीर में तेज निकलने लगता है। और उसका चेहरा प्रकाशवान बन जाता है। इस तेज को अङ्गरेजी में 'ओरा' अथवा 'ओज' कहते हैं।

डा० होकर साहब ने बिजली के आलों से इस की और भी जांच की और वह इस नतीजे पर पहुँचे कि जिस प्रकार लैम्प के चारों ओर प्रकाश की किरनें फैली रहती हैं उसी तरह प्रत्येक वस्तु के चारों तरफ एक प्रकार की रोशनी रहती है। यह रोशनी हलके बादलों की तरह दिखाई देती है और एक मनुष्य की .

दूसरे मे नहीं मिलती। मनुष्य के जैसे विचार होते हैं, जैसे कर्म होते हैं उसी के अनुसार उस के प्रकाश का रंग बन जाता है। एक महात्मा के अन्दर से निकलने वाले प्रकाश का और एक बदमाश आदमी के अन्दर से निकलने वाले प्रकाश का उतना ही अन्तर होता है कि जितना पृथ्वी और आकाश का।

उन्होंने अपनी पुस्तकों में जो कुछ इसका ब्यौरा दिया है वह इस प्रकार है–महापुरुषों का प्रकाश–शुभ्र, निर्मल। देश भक्त का–गुलाबी। ज्ञान वान और शुभ कर्म करने वालों का पीला। डरपोक और शोकातुर मनुष्य का शरबती। निर्भय और वीर का नारंगी। आलसी और सुस्त आदमी का हरा। कामी और क्रोधी का सुर्ख। कुकर्मी और बदमाश का स्याह काला। जो लोग सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा प्रत्येक मनुष्य के रंग को देख सकते हैं वह इसके द्वारा ही उसके भावों की पहिचान कर सकते हैं।

गुप्त रहस्य और साइकोमैटरी विद्या

पश्चिमीय विद्वानों ने एक और विद्या में भी उन्नति की है कि जिसको उनकी भाषा में "साइको मैटरी" कहते हैं। इस इल्म के माहिर कहते हैं कि मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति, पत्थर और धातु इत्यादि में से एक प्रकार की किरणें निकलती रहती हैं उनके द्वारा उस वस्तु का पूरा पता चलाया जा सकता है। साइको मैटरी साइन्स का जानने वाला एक ईंट को सिर्फ छूकर यह बता सकता है कि यह फलाँ भट्टे में पकी है; फलाँ कारीगर ने

बनाई है। उस कारीगर की इतनी उम्र थी, और ऐसा हुलिया था। फलाँ आदमी उसको यहा लाया था। फलाँ जगह से उसकी मिट्टी ली गई थी इत्यादि। इसी प्रकार वह मनुष्यों के अन्तरीय भावों को भी देख सकते हैं।

काशी के ठग

इस समय हमको काशी के ठगों का एक पुराना किस्सा याद आगया है। हम अपने पाठकों के मनोरञ्जन के लिये उसे नीचे लिखते हैं। इसके पढने पर आपको यह भी पता चल जायगा कि भारत वर्ष में भी इस साइन्स साइको मैटरी के जानने वाले मौजूद हैं और वह विद्वान और महात्मा नहीं बल्कि ठग हैं।

बहुत दिनों की बात है मुन्शी सुन्दरलाल हमारे रिश्ते में एक भाई होते थे, इलाहाबाद हाईकोर्ट में उनका एक मुकद्दमा था पाँच सौ रुपये लेकर वह इलाहाबाद पहुँचे। वकील ने कहा- मुकद्दमे की कार्यवाही में एक हफ्ते की देर है जब तक ठहरो। दूसरे दिन इन्होंने वकील साहब से कहा कि हमारा कुछ काम तो है नहीं, हम यहा पड़े २ क्या करेंगे यदि आप कहें तो काशी यात्रा ही कर आयें। वकील ने कहा, अच्छा है, चले जाओ, परन्तु पचास रुपये हमें दिये जाओ, शायद खर्चे की जरूरत पड़ जाये। इन्होंने पचास रुपया उन्हें दे दिये और खुद बनारस को पयान किया। वहीं रात को धर्म शाला में ठहरे। प्रातः गंगा

स्नान किया, दर्शन क्रिया और भोजन करने के बाद आराम किया। चार बजे शाम को बाजार घूमने के लिये निकले। अकेले थे। साढे चार सौ रुपया बसनी में भरा हुआ कमर में बंधा था। यहा पर हम यह भी बता देना चाहते हैं कि मुन्शी कुंवर लाल निहायत खूब सूरत, और फेशनेबिल जवान थे। रईसाना ठाठ से हमेशा रहते थे। ताकत भी इतनी थी कि दो आदमियों को तो वह कोई चीज समझते ही न थे।

जब वह काशी के बाजार में घूम रहे थे, दो आदमी काले रग के, तिलक लगाये, माला और जनेऊ गले में पहिने साफ सुथरे पण्डितों के से वस्त्र धारण किये एक दम इनसे आकर चिपट कर रोने लगे। और कहने लगे-बेटा! बहुत दिन बाद देखा, कहो! कब आये और कहाँ ठहरे हो? तुमने हमें पहिचाना न होगा, हम तुम्हारे ही गाँव के रहने वाले हैं, तुम छोटे थे जब हम वहाँ से चले आये थे, बहुत दिनों से उधर गये नहीं। तुम्हारे पिता से हमारी बडी मित्रता थी। हम हर समय वहाँ ही बैठते थे। तुम्हारे पिता का अमुक नाम था वह इतने भाई थे। इन दोनों का देहान्त तो हमारे सामने ही हो गया था। और तुम्हारी बडी बहिन कि जिसका नाम 'यह था' उसका ब्याह भी हमारे ही सामने फलाँ सम्वत में हुआ था। बरात फलाँ जगह से आई थी। छोटी लड़की को जाने क्या हुआ? तुम्हारे पिता उसके ब्याह के लिये फलाँ जगह से बात चीत कर रहे थे, छोटी

लड़की था यह नाम था और तुम्हारा नाम क्या हम जानते नहीं हैं--तुम्हारा कुंवरलाल नाम है।

तुम भला क्या जानो, देखो--तुम्हारे घर के दक्खिन की ओर जो अमुक नाम के ब्राह्मण का घर है न, उसी में हम भी रहते थे वह हमारे कुटुम्बी हैं। उस मकान के भीतर तीन कोठे हैं, पूरब वाले कोठे में जिसके सामने छप्पर पड़ा है, वहीं हमारे रहने का मकान था। तात्पर्य्य यह कि उन्होंने ऐसे २ पते दिये और ऐसी बातें बतलाईं कि कुंवरलाल को यह पूरा विश्वास हो गया कि यह लोग हमारे ही देश के हैं।

फिर बोले--बेटा! हम दोनों का तो ब्याह हुआ नहीं था। एक हमारी बहिन हमारे साथ हैं, वह तुम्हारी बुआ होती हैं। जब वह तुम्हारे यहाँ आने की सुनेगीं तो बहुत तड़पेगीं। इस लिये चलो उनसे मिल आओ, फिर तुम्हारा सामान भी मंगा लेंगे। जब घर ही मौजूद है तो फिर दूसरी जगह क्यों ठहरो। ऐसा कहते २ वह कुंवरलाल को अनेक गली कूँचों में घुमाते हुए एक बहुत बड़े और सुनसान मकान में ले पहुंचे कि जिसका दरवाजा एक छोटी सी गली में था।

आगे-आगे वह और पीछे पीछे कुंवरलाल। मकान तीन चौक का था। तीसरे चौक में एक बहुत बड़ा कमरा था उसमें दो चारपाई छोटी सी पड़ी थीं और सारे मकान में कोई सामान नहीं था। अब कुंवरलाल के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ कि यह लोग अवश्य ठग हैं और आज हम बुरे फंसे। हमारे पास

साढ़ेचार सौ रुपया है। आज जान भी गई और रुपया भी गया। हिम्मत बाँधी कि ऐसे दो तीन आदमियों को तो हम अकेले ही बहुत हैं और यहाँ से भागने पर भी ठीक न होगा इसलिये चलो आगे जो कुछ होगा देखा जायगा।

जब भीतर पहुचे देखा—दो आदमी और बैठे चिलम पी रहे हैं और एक औरत चालीस वर्ष से ऊँची उम्र वाली, काली-कलूटी सिंदूर का टीका लगाये खड़ी है। इनको देखते ही दौड़ के आई और बड़े प्रेम से चुपट कर फूट २ के रोने लगी। बेटा! आज बहुत दिन पीछे तुम्हें देखा। सब घर की कुशलक्षेम पूछी। बोली—मैं पानी लाती हूँ कुछ मीठा खालो, कपड़े उतार डालो। कुंवरलाल ने भी इस अवसर को अपने लिये लाभदायक समझा। साफा शिर से उतार के चारपाई पर रख दिया, डण्डा हाथ का वहीं रक्खा, जनेऊ कान पर चढ़ा कर बोले-पेशाब कर लूँ अभी आता हूँ। ठगों ने पेशाब की जगह बताई परन्तु वह बाहर ही चलते गये परन्तु ठग इत्मीनान से बैठे रहे कि अब कहाँ जा सकता है अवश्य आयेगा।

जब यह दूसरे चौक को पार कर चुके और तीसरे मे आगये तब शुवाह हुआ और इनके पीछे दौड़े परन्तु यह भी ऐसे भागे कि पीछे को मुँह भी नहीं किया और न किसी को पकड़ाई दी।

थोड़ी दूर चौराहा था, वहाँ एक पुलिस का कान्स्टिबिल खड़ा था उसको घटना सुनाई, उसने कई और सिपाहियों के साथ मकान पर धावा बोल दिया परन्तु अब वहाँ चिलमों को राख के

सिवा न चारपाई थीं, न इनका साफा और न डण्डा और न कोई आदमी। इस प्रकार ठगों के पंजे से इन्होंने मुक्ति पाई। उसी समय गङ्गा पर जाकर प्रसाद चढाया।

यह हिन्दुस्तानी ठगों का इल्म है कि जिसको यूरुप वालों ने अपनी साइन्स में एक बड़ी चीज समझा है। जेब के रुपये पैसों को ठीक २ गना देना या दूसरे और पते इस प्रकार के दे देना, यह बाजीगरी हिन्दोस्तान वाले अब भी खूब जानते हैं योरुप वाले इसको मिस्मरेजम का करिश्मा समझते हैं इसी का नाम "साइकोमैटरी साइन्स्" है।

बुरी सुहबत

स्काटलैन्ड के मशहूर डाक्टर कोट लिखते हैं कि जो प्रकाश मनुष्य या दूसरी वस्तुओं से निकलता है, उसका अस्तित्व है यह ईथर (आकाश) में तरगें (Vibrotion) उत्पन्न करता है। इस प्रकाश के साथ २ उस मनुष्य के भाव, उच्च व नीच विचार, स्वभाव और चाल चलन का असर भी शामिल होता है और यह ईथर के द्वारा दूसरों पर अपना अक्स (बिम्ब) डालता है और उसको अपना जैसा बनाता है। बदचलन और कमीने (नीच) मनुष्य की धारें 'निगेटिव' होती हैं जो दूसरों को नीचे गिराती हैं और उच्चकोटि के महापुरुषों की 'पाजेटिव' जो हमेशा दूसरों को ऊँचा उठाती रहती हैं और इसका फल मनुष्य प्रत्यक्ष देख सकता है। यहाँ तक ही नहीं, वह लिखते हैं कि जब मनुष्य किसी कोरे कागज पर कुछ मजमून लिखना चाहता है तो उसके

उन विचारों का फोटो कि जिनको वह लिखना चाहता था उसके लिखने से पहिले ही कागज पर आ जाता है और यह "साइकोमैटरी" के द्वारा दिखाई दे सकता है।

भाव और वस्तुएँ

मनुष्य जिस प्रकार के भाव रखता है, जैसा उसका स्वभाव होता है तथा वह जिस प्रकार के कर्म करता है उसका प्रभाव उसके मुख और शरीर तक ही नहीं रहता बल्कि उसके इस्तैमाल करने की तमाम वस्तुएँ चाहे कपड़ा हो, चाहे मकान या कोई दूसरी वस्तु हो उसके असर को लेती रहती हैं। इस तरह लेते २ थोड़े दिनों बाद वह उसी के रङ्ग में रङ्ग जाती हैं। पुराने लोगों में यह दस्तूर था कि दूसरों की इस्तैमाल की हुई चीजों से बहुत बचते थे किसी का उच्छिष्ट (झूंठा) भोजन नहीं करते थे किसी का झूठा पानी नहीं पीते थे, और न किसी का उतरा हुआ कपड़ा पहिनते थे। इन सब बातों में रहस्य था कि जो इस 'साइकोमैटरी' साइन्स के द्वारा जाना गया है। यह साइन्स बतलाती है कि नेक और अच्छे स्वभाव के मनुष्यों की चीजों में नेकी और अच्छाई के परिमाणु भरे रहते हैं और कुविचार और, बदे मनुष्यों की वस्तुओं में ऐसे विकार रहते हैं कि जिनके द्वारा दूसरों के शरीर और मन दोनों गन्दे हो सकते हैं और उनमें अनेक रोग पैदा हो सकते हैं।

बाल और आँखें

साइन्स द्वारा यह बात भी साबित हो चुकी है कि मिसमरेज्मी धारा (ओज) का असर शरीर के चार स्थानों से बहुत कुछ खारिज होता है। १ त्वचा-२ आँख-३-हाथ और ४-पाँव। इसलिये मनुष्य को उचित है कि इन चारों स्थानों की वस्तुओं से अवश्य बचे, किसी दूसरे की चीज अपने काम में न लेवे। हिन्दू माताएँ अपने बच्चों को बहुधा यह उपदेश देती तुमने सुनी होंगी कि—किसी दूसरे का कंघा शिर में मत डालना, किसी की आँख की सलाई अपनी आंख में मत लगाना, किसी दूसरे की लाठी व छड़ी हाथ में मत लेना और न किसी का जूता पहनना। इसमें दोनों बातें शामिल थीं। इनके द्वारा बहुत से रोगों के जर्मस(कीड़े) भी एक से दूसरे को पहुँच सकते हैं और साथ ही साथ मन भी गन्दा बन सकता है।

परन्तु उनकी यह शिक्षा किसी उच्च कोटि के महात्मा की इस्तैमाल की हुई वस्तु के लिये नहीं होती थी बल्कि उनकी बरती हुई तो अपने लिये लाभ दायक और बरकत की चीजें समझी जाती थीं। क्यों ? इसलिये कि उनके अन्दर शुभ गुण और शुभ संकल्प भरे हुये होते थे।

आध्यात्मिक मण्डलों में और बड़े २ सत्संगों में इन बातों की ओर पूर्ण ध्यान रक्खा जाता है। साधन करने के समय तथा सतसंग में बैठने के समय संसारी माया में फंसे हुए मनुष्यों की किसी वस्तु को पास नहीं रहने देते वरन् एकाग्रता में गड़बड़

पड़ जाती है। इसलिये कि उस वस्तु में उसके मालिक के विचार भरे रहते हैं जैसा कि हम ऊपर बतला आये हैं कि यह विचार एक मण्डल बना लेते है, फिर जिस समय कोई मन को एकाग्र करता है, उस समय यह विचार उससे टकराते हैं और उसको चंचल बना देते हैं। हमको यहां पर एक दृष्टान्त याद आया है। दृष्टान्त सच्चा है और ऊपर की बात को बिलकुल साफ कर रहा है इस लिये नीचे बताते हैं।

दृष्टान्त

एक बेर महान शक्तिशाली महात्मा‥ ‥बैठे अपनी शिष्य मण्डली को आन्तरिक सतसंग करा रहे थे (आन्तरिक सतसंग उसको कहते हैं कि जिसमें गुरू अपने सन्मुख बैठे हुये शिष्यों के मनोविकारों को रोक के अपनी शक्ति से एक दम उनको शान्त कर देता है। इसकी कियाएँ हैं जो कि महापुरुषों द्वारा जानी जा सकती हैं) उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि बराबर जोर लगाने पर भी किसी का मन स्थिर नहीं होता। मालूम हुआ कि यहां पर किसी अन्य (जो सत्संगी नहीं हैं) मनुष्य की कोई वस्तु है और वही अपने अन्दर से धारें फेंक २ कर इन नवीन विद्यार्थियों को गड़ बड़ कर रही है। बोले—

"सब लोग आंखें खोल दो। देखो यहां किसी गैर सत्संगी की कोई वस्तु है" ? सब लोग ढूंढने लगे। लोगों ने कहा—यहां कुछ नहीं है। उन्होंने कहा नहीं फिर ढूंढों। कुछ न कुछ किसी

दूसरे की चीज अवश्य है वरना तुम्हारा चित्त चंचल क्यों हुआ। आज्ञानुसार ढूंढ़ने पर पता चला कि कोई मनुष्य अपनी लाठी वहां रखकर बाजार गया है। हुक्म दिया–इसको दूर रख आओ और फिर भजन के लिये बैठो। ऐसा ही किया गया, और उस लाठी के हटाते ही मन एकाग्र हो गया। इसका कारण और कुछ नहीं था केवल यह था कि उस लाठी में चंचलता की धारें निकल निकल कर साधकों से टकराती थीं, और उनके चित्तको चंचल बनाती थीं। यह धारें लाठी की नहीं थीं बल्कि उस मनुष्य के विचार थे कि जिसके हाथ में वह लाठी रहती थी। इस प्रकार कपड़ों इत्यादि में भी वह विचार भर जाया करते हैं कि जो उन वस्तुओं के सेवन करने वाले के होते हैं।

स्थान

विचारों के परिमाणुओं को सब से अधिक पृथ्वी खींचती है। जिन स्थानों पर महापुरुष संत रहते हैं वहां की भूमि पवित्र और सात्वकी धारें अपने अन्दर से हर समय फेंकती रहती है और ऐसे स्थानों में पहुँच कर मन अपने आसुरी भावों को त्याग के बिना परिश्रम के शान्त और प्रसन्न हो जाता है और जहां कामी, क्रोधी, दम्भी, और लालची इत्यादि निवास करते हैं वहां की जमीन अपवित्र और कुविचारों को निकालती रहती है। ऐसे स्थानों में बैठकर नवीन साधक ही नहीं वरन कभी २ उच्च कोटि के अभ्यासी भी अशान्त और परेशान हो जाते हैं।

प्रसादी

हर प्रकार की खाद्य वस्तुएं भी मनुष्यों के अच्छे और बुरे विचारों के असर को अति शीघ्र खींचती हैं। फल-फूल, मेवा-मिष्टान्न महापुरुषों के हाथ में जाते ही शुद्ध और पवित्र बन जाते हैं। उनको प्रेमपूर्वक खाने से हृदय सात्त्विक भाव लेने लगता है। हाथ में ही नहीं बल्कि सम्मुख पहुँचते ही उनमें प्रभाव आ जाता है, इसी को 'प्रसाद' कहते हैं। मुसलमान प्रसाद को 'तबर्रुक' कहते हैं—जिसके अर्थ हैं—बरकत देने वाली चीज अथवा वृद्धि करने वाली वस्तु।

अपवित्र, गन्दे और नीच प्रकृति वाले मनुष्य ऐसी वस्तुओं को छूकर अपवित्र कर देते हैं। यही कारण था कि भारत देश की ऋषि मण्डली छुआ-छूत का विचार बहुत करती थी। जिन लोगों का चाल चलन और व्यवहार ठीक नहीं होता था उनकी दी हुई वस्तु वह ग्रहण नहीं करते थे ताकि उनके साधन में रुकावट न हो।

अन्न

फल और मिष्टान के मुकाबिले में अन्न इस प्रकार के असरों को और भी जियादा खींचता है। अन्नों में गेहूँ और चने का नम्बर सब से अधिक है। जौ और चावल कम लेता है। इसलिये ही जव-चावल को सतोगुणी और गेहूँ-चना को रजोगुणी अन्न कहा जाता है।

शुद्ध और धार्मिक कमाई वाले का धान्य सात्त्वकी वृत्ति उत्पन्न करता है और चोरी, बेईमानी, चालाकी, रिश्वत, सूद इत्यादि की कमाई वाला धान्य पेट में पहुँचते ही बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है। ऐसे अन्न का खाने वाला मनुष्य आध्यात्मिक मार्ग में सब से पीछे रहेगा। वह जब तक इन बातों को नहीं त्यागेगा अथवा इस प्रकार के दूसरों के अन्न को ग्रहण करना नहीं छोड़ेगा तब तक वह आत्म उन्नति नहीं कर सकता।

धान्य ही नहीं, भोजन के बनाने वाले, भोजन के परोसने वाले, और भोजन की ओर देखने वाले का असर भी भोजन में में बहुत जल्द प्रवेश होता है। यदि पकाने वाला और परोसने वाला ब्राह्मण (हर समय भगवान की याद में रहने वाला है) तब तो उस भोजन से हमारी वृत्ति शुद्ध हो कर हम को ऊपर उठायेगी और यदि शूद्र अर्थात् नीच प्रकृति का संसारी मनुष्य है तो भोजन के द्वारा वह अवश्य ही हम को पतित करके छोड़ेगा और ऐसा भोजन करते २ एक दिन हम अवश्य अपने साधनों को छोड़ नीच विचार वाले बन जायेंगे। इस विषय पर हमने अपनी पुस्तक आसनदेवी में विस्तार से लिखा है साधक उसे पढ़लें यहाँ पर संक्षेप ही से काम लिया है।

ऐनीमल मिग्नेटिज्म

ऐनीमल मिग्नेटिज्म (कुव्वत हैवानी) वह शक्ति है जो हर जानदार में रहती है। यह दो प्रकार की होती है। एक-शान्तिदायक और दूसरी गरम। इन्हीं को अङ्गरेजी में पाजेटिव (Pos-

itive) और निगेटिव Negative कहते हैं। शरीर का दाहिना भाग पाजेटिव और वायाँ भाग निगेटिव है। यह शक्ति प्रत्येक रोम से हर समय निकला करती है। विशेषकर हाथ, पाँव और दोनों भौंओं के बीच के तिल जिसको योग की भाषा में 'आज्ञा चक्र' कहते हैं अधिकतर निकलती हुई पाई जाती है। एकाग्रता के साधन करने से यह दोनों प्रकार की शक्तियाँ प्रबल बनाई जा सकती हैं। जिस प्रकार जल के प्रवाह को रोक कर उसको एक बार करके निकालने पर उसके बल का अन्दाजा लगाना कठिन हो जाता है उसी प्रकार मनोनिग्रह हो जाने पर मन की गुप्त शक्तियों का ज्ञान होजाता है। जिस समय वह उभर आती हैं मन वान्छित फल देती हैं और संसार में असम्भव काम भी कर दिखाती हैं।

सिद्धियाँ

ऐसे सिद्ध उन शक्तियों के द्वारा बड़ी २ करामातें दिखा सकते हैं। वह अपनी कल्पना शक्ति के सहारे सभी कुछ कर सकते हैं। योग दर्शन में वर्णन की हुई विभूतियाँ केवल मानसिक शक्ति के तमाशे हैं और कुछ नहीं। जो योगी साँसारिक वासनाओं से अपने को अभी अलग नहीं कर सकते, जिनको मान बड़ाई तथा धन की इच्छा बनी हुई है, वह सांसारिक कार्यों में अपने इस अमूल्य निधि को खर्च कर डालते हैं और आत्म सुख से वंचित रह जाते हैं।

सांसारी लोग, धनी की सेवा सुश्रूषा तथा प्रशंसा करने को हमेशा तैयार खड़े रहते हैं। कांचन कामिनी के लालच में उनको फसाकर उनकी उस कमाई को छीन लेते हैं और थोड़े दिनों के पश्चात न वह न इधर के रहते हैं न उधर के। धोखेबाज दुनियांदार इस प्रकार उनकी इस दौलत को लूटते हैं और उनकी कमाई से सहज ही में अपने कार्य निकालते हैं। जब वह लुट-लुटा कर नंगे रह जाते हैं तब कोई भी उन्हें नहीं पूछता। कल जो लोग ईश्वर समान उनको मान कर उनका पूजन करते थे, उनके ऊपर अपूर्व श्रद्धा रखते थे, आज वही उनकी बुराइयों पर तुल पड़ते हैं, और कई प्रकार की निन्दा करते देखे जाते हैं। यह सब शक्ति शालिनी महामाया के विचित्र खेल हैं अथवा यहाँ के स्वार्थी मनुष्यों की दशा है।

मान बड़ाई देख कर भक्ति करै संसार।
जब कुछ देखै हीनता अवगुन धरै गंवार॥

चरण स्पर्श

हिन्दुओं के यहाँ बड़े लोगों के चरणस्पर्श करना तथा उनके चरण पखार के चरणामृत लेने का रिवाज प्राचीन काल से अब तक चला आता है। कृष्ण महाराज ने सुदामा जैसे दीन-हीन ब्राह्मण के चरणों को बड़े प्रेम में धोकर उस जल को पान किया था। बड़े २ अधिपति ऋषि गणों के चरण पखारते थे और उसको सकुटुम्ब प्रेम के साथ पान करते थे। इसमें रहस्य था कि जिसको उस समय के विद्वानों ने समझा था। आज भी इस बिगड़ी

हुई दशा में हिन्दुओं के बालक वृद्ध पुरुषों के चरण छूते देखे जाते हैं यद्यपि इसके मर्म से वह अनभिज्ञ हों, परन्तु इसका लाभ उनको कुछ न कुछ अन्य पहुंचता होगा। कारण पाँव और शिर का घनिष्ट सम्बन्ध है। "मेडलाअवलाङ्गेटा" से Nerves (नाड़ियां) निकलती हैं और जिनके द्वारा ओज सारे शरीर में दौड़ा करता है वह पांव में आकर समाप्त होती हैं जैसा शिर में इनका केन्द्र है वैसा ही पांव में एक सैन्टर है कि जहाँ से टकरा के ओज फिर शिर की ओर लौटता है। चरण स्पर्श करने वाला शिर की ओर से नीचे जाने वाले ओज को उससे खींच कर, अपने हाथों के द्वारा अपने अन्दर दाखिल करता है और उसी जैसा पवित्र विचार और शक्तिवान बनने की कोशिश करता है। इसके द्वारा उसको यह लाभ होता है कि जिस वृत्ति को कठिन तपस्या से वर्षों में वह प्राप्त नहीं कर सकता था इसके प्रभाव से कुछ समय में ही वह उस जैसा बन सकता है।

चरणामृत

जल और दूध मैगनेटिक पावर को बड़ी तेजी से अपने अन्दर भर लेता है यह बात साइन्स से साबित हो चुकी है उस ऐसे जल के पान करने से विद्युत शक्ति शरीर में बड़ी जल्दी प्रवेश हो जाती है इसीलिये रोगों के दूर करने के लिये मिस्मराइज़र तथा झाड़ फूंक करने वाले लोग बहुधा जल के द्वारा ही अपना

असर पहुँचाया करते हैं। मिस्मेरेज़्म वाले अपनी आंखों और उङ्गलियों के पोरुओं से जल में विद्युत शक्ति भर देते हैं फि उसको रोगियों को पिलाने को देते हैं। मंत्र और जादू-टोना वाले कोई मंत्र पढ़ कर उस पर फूंक मार देते हैं इस प्रकार के जल में असर आ जाता है और वह रोगी के लिये औषधि का काम देता है। इस प्रकार का जल शारीरिक रोगों के दूर करने के लिये लाभदायक हो सकता है परन्तु मन और बुद्धि के विकारों (रोगों) पर उसका कोई प्रभाव नहीं होता। मन और बुद्धि को नीरोग या शुद्ध करने के लिये तो महापुरुषों का चरणामृत ही काम कर सकता है। यदि वह पूर्ण श्रद्धा और सद्भावों के साथ ग्रहण किया जाय और साथ ही साथ वह मनुष्य भी कि जिसके चरणों से हमने प्रभाव खींचा है निर्विकारी तथा सद्गुणों की मूर्ति हो। विकारी मनुष्यों के जल में विकार आते हैं और वह हमको और भी गंदा और अपवित्र कर देते हैं इसलिये इस कार्य्य को बहुत सोच समझ के करना उचित है।

हाथ मिलाना।

पांव के बाद ओज का दूसरा सैन्टर हाथों में है। हाथों में से हर समय यह धारें निकलती रहती हैं। क्रिया जानने वाला मनुष्य इस शक्ति को किसी समय भी तेज कर सकता है। तेजी के समय बड़े प्रबल वेग से विद्युत शक्ति हाथों से खारिज होने लगती है उस समय हथेली और उङ्गलियों में एक प्रकार की सुरसुराहट सी अनुभव होती है जिस समय ऐसा मालूम देने लगे

उस हाथ से कोई भी काम ले सकते हैं। ऐसे हाथ को दूसरे के शिर पर रख के उसके भावों को बदल सकते है। रोगियों के शरीर पर फेर के रोगों को दूर कर सकते हैं। जल मे उङ्गली डाल के उस जल को शक्तिवान् बना सकते है। तथा अन्य मनुष्य के हाथ मे हाथ मिला कर उसको अपनी ओर खींच सकते हैं। बालक स्त्रियों और निर्बल प्रकृति के प्राणियों पर ही इसका प्रभाव होता है। दृढ़ संकल्प (Strong will) वाले मनुष्य पर कोई असर नहीं होता। आज कल अनेक बदमाश फ़क़ीर इस प्रकार के करिश्मे करते हुये देखे जाते हैं। हमको इस प्रकार की कई घटनायें मालूम हैं नीचे उनमें से एक आपको भी सुनाते हैं।

घटना

एक महापुरुष मैनपुरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के वर्नाक्यूलर स्कूल में अध्यापक थे। वह मुसलमान थे। शाम को वह अपने मकान पर बैठे थे, पास ही एक इनके स्कूल का विद्यार्थी बैठा था जिसकी आयु सत्तरह या अठारह वर्ष की थी और जाति का ब्राह्मण था। एक भूखा-नंगा, हाथ-पावों मे लुंज मुसलमान फ़क़ीर आवाज देता हुआ आया। "भूखा हूं कोई रोटी खिलाओ" इन्हें दया आ गई, बुलाया भोजन खिलाया, पानी पिलाया। जब तृप्त होकर चलने लगा, उसने दूसरे हाथ के सहारे अपने एक लुंज हाथ को उठाया और उस बालक के सिर पर फेर कहने लगा-'बड़ा सुन्दर बालक है'। इतना कहते ही उस नवयुवक के होश जाते रहे,

उसकी आखों में सुर्खी आगई और वह मतवालों की तरह उसके पीछे चलने लगा।

यह बदमाशी देख इन्हें क्रोध आगया। बोले-"ओ नमक हराम सूअर। हमने गरीब समझ तुझे खाना खिलाया और तैने हमारे साथ ही यह हरकत की। ठहर अभी हम तुझे ठिकाने लगाते हैं"। यह कह कर इन्होंने फौरन ही अपने गुरू का स्मरण किया और ध्यानावस्थित हो उसकी सारी शक्ति को खींच लिया। अब तो वह तड़पने लगा। माफी चाही परन्तु इन्होंने उसे धक्के दे बाहर निकाल दिया। और उस बच्चे को उसके पंजे से बचा लिया। अनेक साधु छोटे २ बच्चों को इसी तरह चुरा ले जाते हैं, उनके साथ दुराचार करते हैं और उनको अपना चेला बना भिक्षा मंगवाते हैं और सेवा लेते हैं। गेरुआ वस्त्र धारण किये अनेक ईसाई भी इसी प्रकार बच्चों का उड़ाते देखे जाते हैं। साधु-आना वेष धारण किये हिन्दू, मुसलमान और ईसाई तीनों फिर्कों के बदमाश मनुष्य इस प्रकार के काम करते देखे जाते हैं वह केवल एक क्रिया है जो कि थोड़े दिन के अभ्यास से आ जाती है। यूरुप वालों के यहां इसका नाम भी "मिस्मेरेज्म" है।

मुसलमान और ईसाई

जैसे कि हिन्दुओं में चरण स्पर्श करने का रिवाज है वैसे ही मुसलमान और ईसाइयों में हाथ मिलाने का दस्तूर है। साधारणतया प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे से हाथ मिला कर अपने प्रेम का परिचय देता है। परन्तु जिस समय वह लोग किसी ओजस्वी

महात्मा से हाथ मिला चुकते हैं तो अपने हाथों को आंखों और हृदय पर ले जाते हैं और उस ओज को जो उसके हाथों से खींच के अपने हाथों को भरा था अपने हृदय और आखों में दाखिल कर देते है। कभी २ ऐसे पवित्र हाथों को बोसा देते (चूमते) हैं, इन सब का तात्पर्य्य एक ही है।

भेद

यद्यपि इन दोनों क्रियाओं द्वारा हम ओज ले सकते हैं परन्तु आध्यात्मिक उन्नति के लिये चरणस्पर्श अधिक लाभदायक है। कारण—चरणस्पर्श करते समय, हमारा अहंकार टूटता है। शिर के झुकते ही मिथ्या अभिमान का चूर होने लगता है और हम थोड़ी देर के लिये छोटे बन जाते हैं। अभिमान का पर्दा ही हमको विमुख किये हुये है। जितना २ इसको हम तोड़ते जायेंगे उतने ही उसके समीप को बढ़ते जायेंगे। चाहे किसी प्रकार भी हम अपने अहंकार को दूर करें। ईश्वर प्राप्ति उसी समय हो सकेगी कि जिस समय निर्हंकार बन जायेंगे। बारम्बार शिर झुकाने तथा छोटे बनने के भाव लेने से हमारा गर्व हमसे जल्दी छुट जाता है। हाथ मिलाते समय यह बात नहीं होती उस समय हमारे अन्दर अहंकार उतना ही लगभग मौजूद रहता है कि जितना पहले था।

हानि

चरण स्पर्श करने वाले को जहां लाभ होता है वहां चरण

मरन म विरथम जो मरे, अजर अमर सो हाय ॥
कबीर मन मृतक भया, दुर्बल भया शरीर ।
पाछे लागे हरि फिरे कहत कबीर, कबीर ॥
रोड़ा हो रहु बाट का तज आपा अभिमान ।
लोभ मोह तृष्णा तज, ताहि मिले निज नाम ॥
कबीर चेरा सन्त का, दासनहू का दास ।
अब तो ऐसा हो गया, जस पाव तले की घास ॥ (कबीर)

आँख

हाथ, पाँव और त्वचा मे किस प्रकार विद्यु त शक्ति निकलती है और उसके द्वारा क्या ? काम किये जा सक्ते हैं इसका विवरण सक्षेप में हमने बता दिया। अब आँख के सम्बन्ध में नीचे लिखते हैं। आँख शरीर का वह द्वार है कि जिसके द्वारा मनुष्य के भाव हर समय बाहर निकला करते हैं। आँख बतला देती है कि यह मनुष्य क्रोध मे डूब रहा है य शान्त है। धन लोलुप और लालची की आँख चञ्चल होती है। चोर और व्यभिचारी कामी की आँख मे ठहराव नहीं होता। निर्बल और निपमय की आँख दूसरे के सन्मुख नहीं उठती। दयावान की आँख में शील होता है। क्षत्री और बहादुर की आँख वीरता प्रगट करती है। सरल स्वभाव और सतोषी की आँखों से शान्ति टपकती है। त्राटक और मेस्मेरेज्म करने वालों की आँखों में

मूरता आजाती है। योगी की आँखों से सुर्खी और तेज झलकता है, और महापुरुषों की आँखों में प्रेम और आकर्षण की धारें निकला करती हैं। साधु और असाधु की पहिचान आँखों द्वारा ही की जाती है। किसी मत का कथन है —

"साध की देख आँख और माथा"

सन्तों का माथा चौड़ा और ऊँचा होगा उसमें से तेज झलकता हुआ दृष्टिगोचर होगा और उनकी आँखों में खिचावट होगी। सन्यासियों और त्यागियों की आँखों में रसापन होगा इत्यादि। तात्पर्य्य यह है कि शरीर में आँख ही वह दर्पण है कि जो आन्तरिक भावों का बिम्ब बाहर लाकर दिखाती है।

यह आँखें शरीर में तीन होती हैं, दो आँख बाहिर दिखाई देती हैं। और एक आँख गुप्त रहती है। जिन आँखों को हम देखते हैं उनकी बनावट नारंगी की तरह गोल है इन गोल आँखों का जो भाग बाहर रहता है वह आँख नहीं है, वह एक लैन्स (शीशा) है कि जिसके बीच में एक काली पुतली होती है और इस काली पुतली के बीच में तिलके बराबर एक छिद्र होता है उसमें होकर आँख अपनी किरण फेंकती रहती है और प्रत्येक वस्तु का बिम्ब अपने अन्दर लेती रहती है आँख की शक्ति इसके उस सिरे पर रहती है कि जो इस लैन्स के बिल्कुल मुकाबिल दो इन्च के करीब अन्दर की ओर है।

शिव नेत्र

जिस प्रकार यह आँखें अन्दर हैं, उसी तरह तीसरी आँख भी भीतर मस्तिष्क में है, इसका स्थान चोटी से लग भग 1½ इंच नीचे पीछे की ओर है वहाँ से यह अपनी किरणें जिस छिद्र के द्वारा बाहर फेंकती है वह दोनों भौंओं के बीचा बीच है। संत लोग इस स्थान को 'तिल' और योगी इसको आज्ञा-चक्र कहते हैं। इसका रंग शुभ्र शुक्र के तारे की तरह है। व्यवहार के समय अधिक तर मन इसी स्थान से बाहर जाकर काम करता है। इसलिये कोई २ पथाई इसी को मन का स्थान बतलाते हैं।

यह तीसरा शिव नेत्र साधारण और संसारी जनों का बन्द रहा करता है। जो लोग साधन और अभ्यास के द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति में जुट पड़ते हैं उनका कुछ काल के पश्चात् यह नेत्र खुलने लगता है। जितना २ यह खुलता जाता है उतना २ ही साधक को तत्त्व ज्ञान प्राप्त होने लगता है। पूर्ण खुल जाने पर यथार्थ ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार बारम्बार होते होते एक दिन वह आ जाता है कि जब उसका पूर्ण अधिकार उस पर हो जाता है ऐसा मनुष्य किसी समय भी आवश्यकता पड़ने पर उसको खोल सकता है और बन्द कर सकता है।

सतसंग

जिस समय कोई तत्व दर्शी महापुरुष इस नेत्र को खोल के बैठता है तो उसके अन्दर से एक बड़े प्रबल वेग के साथ दिव्य त

शक्ति बाहर निकलने लगती है यह उसकी Electric power दोनों भोओं के बीच आज्ञाचक्र के स्थान से निकला करती हैं। यह धारें निकलते ही वायु मंडल में कम्पन Vibration उत्पन्न कर देती हैं वहां के राजसी और तामसी विचार वातावरण से निकल के भागने लगते हैं और उस वातावरण atmosphere में शान्ति छा जाती है।

रजो गुण के वेग के समय हृदय में वासनायें और इच्छायें उठा करती हैं। सतोगुण वर्तमान होने पर शान्ति आनन्द, ठहराव और विचार अनुभव होता है यह प्राकृतिक नियम है। ऐसे समय समीप बैठा हुआ प्रत्येक मनुष्य सतोगुण रूपी अमृत जल में डुबकी लगाने लगता है और एक अद्भुत आनन्द और शान्ति का अनुभव करने लगता है। इसी का नाम सतसंग है।

जिस मनुष्य के पास बैठ के हृदय की सारी व्यथायें दूर होजायें तथा मन की उथल पुथल बन्द हो जाय उसके लिये यह अनुमान कर लेना चाहिये कि इसका शिव नेत्र खुल गया है।

शिव

शिव के अर्थ कल्याण कर्ता के हैं। यह ज्ञान का अधिष्ठाता है, जिस स्थान पर यह देवता निवास करता है उसको शास्त्रों ने

कैलाश कहा है। कैलाश हमारे अन्दर मस्तिष्क में है इस का रंग शुभ्र स्फटिक मणि की तरह 'श्वेत' है। उसमें अंधकार नहीं है। हमारे अन्दर से जितना २ अंधकार वा कालोष्ठ हटती जाती है, तथा जितने २ हम प्रकाश में आते जाते हैं उतने हम कैलाश की ओर बढ़ते जाते हैं और हम को ज्ञान के सूर्य्य की किरण अनुभव में आने लगती है। प्रकाश के द्वारा उन गुप्त रहस्यों वा भेद खुलता है जो कि जगद् विधात्री माता ने गोपनीय रक्खे हैं। हमारी दृष्टि सूक्ष्म होती जाती है और हम उस दृष्टि से सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म तत्त्वों को देखने लगते हैं।

आकाश तत्व सूक्ष्म बतलाया जाता है परन्तु मन, बुद्धि अहंकार तत्व इससे भी सूक्ष्म हैं शिवनेत्र के खुलने पर इन तत्त्वों का रूप प्रत्यक्ष हमको दिखाई देने लगता है, यहां तक संसार समाप्त हो जाता है। अत्र सांख्य मतानुसार एक ही तत्व देखने को रह जाता है कि जिसको आत्मा, परमात्मा वा ब्रह्म कहते हैं। लेकिन इस ब्रह्म और संसार के बीच में एक और चीज भी बहती हुई अनुभव होती है कि जिसका नाम महामाया, शक्ति या प्रकृति है। इस प्रकृति का भी रूप है जो शिव नेत्र के द्वारा सन्मुख लहरें मारता हुआ दिखाई देता है। इस रूप का वर्णन करना अति कठिन है इस लिये कि वह सूक्ष्म ही नहीं है बल्कि महा कारण अवस्था में है। जगत के सारे पदार्थों का गर्भ धारण किये हुये जगद् जननी यहां विराज रही है। ब्रह्म निराकार है, जगत् साकार है और यह अनुपम दिव्य शक्ति न साकार है, न

में अपने को और अपने साथियों को ले जाना ही वह अपने लिये कर्तव्य समझता है।

सुख-दुःख

सुख और दुःख माने हुये हैं जिस समय तुम यह समझ जाओगे कि अमुक कष्ट का परिणाम हमारे लिये लाभ दायक है तो उस कार्य्य के लिये कठिन परिश्रम करते हुये भी तुम दुःखी नहीं होंगे। धन की इच्छा रखने वाला मनुष्य वर्फ के पर्वतों को चीरता हुआ तथा मरुभूमि के रेतीले मैदान में अपने पांवों को झुलसाता हुआ भी दुःखी नहीं होता। कामी पुरुष अपनी प्रेम पात्रिका के मिलने तथा अपनी काम पिपासा बुझाने के लिये क्या कुछ नहीं करता परन्तु कभी दुःखी नहीं होता। क्यों? इसलिये कि वह समझ रहा है कि इसके फल स्वरूप मुझे मनोवांछित वस्तु प्राप्त होने वाली है यदि ऐसा वह न समझता होता तो उस कार्य के करने में उसको अत्यन्त कष्ट होता। इसी प्रकार भ्रम का पर्दा हटा के जिस समय रोगी वा दुःखी मनुष्य जब यह जानने लगता है कि इसके भोग हो जाने पर ही मैं अपने निज स्थान की ओर (कि जहां सुख ही सुख है और जहां के आनन्द का कोई वर्णन नहीं कर सका) बढ़ सकता हूं। परमहित चिन्तक पिता जगदीश्वर अपने धाम में बुलाने के लिये मेरे प्रारब्ध कर्म भोग करा रहा है। एवं अपनी प्यार की गोद में उठाने के लिये कल्याणमयी 'माँ' हमारे मलों को साफ कर रही है तो उस समय अत्यन्त कष्ट होने पर भी हमारी आशाएँ हमको दुःखी नहीं

होने देती। भविष्य की लालसा में हम उस समय विषादाओं का आवाहन करने लगते हैं और गुरा रहते हैं। देहली के प्रसिद्ध उर्दू कवि 'मिहर' साधुआना वृत्ति के मनुष्य थे। आप कहा करते थे—

ऐ क़ज़ा ! आ,कि तू मेरे लिये बरकत होगी।
मेरे पर्दे में गुर्बा,माबूद की रहमत होगी ॥

परन्तु यह ज्ञानवानों की बात है ज्ञानी सुख और दुःख दोनों में ईश्वरीय दया का अनुभव करता है और एकरस शान्त रहता है। अज्ञानी मूर्खता के धक्के से थोड़ा सुख मिल जाने पर आपे से बाहिर हो कर्तव्य का विचार त्याग आसुरी कर्मों में अपने को फंसा देता है और दुःख के छींटे के पड़ते ही इतना विह्वल हो जाता है कि तड़पने लगता है। फिर उस समय 'हाय-हाय' के सिवा उसके मुख से कोई शब्द निकलता हुआ ही नहीं सुनाई देता वह थोड़े से कष्ट को भी सहन नहीं कर सकता। घबड़ा जाता है। इस लिये कि उसके मर्म से अनभिज्ञ है। ज्ञानीजन भोग कराने का प्रयत्न करते हैं और मेस्मराइजर भोग छुड़ाने का यत्न करते हैं यह इन दोनों का अन्तर है।

श्रेय मार्ग व प्रेय मार्ग

यह दो रास्ते हैं जो एक उत्तर को जाता है और दूसरा दक्खिन को,अथवा एक पूर्व को गया है और दूसरा पच्छिम को, इसके बीचा-बीच एक सेंटर है जिस पर मनुष्य खड़ा है वह

चाहे अपने को उत्तर को लेजाये और चाहे दक्खिन की। जो लोग उत्तर की ओर जायँगे वह दक्खिन को न जा सकेंगे और न दक्खिन देश की उनको कोई खबर होगी क्योंकि दक्खिन की ओर उनकी पीठ है और पीठ मे आँखें नहीं होती आँखें सम्मुख हैं। और इसी प्रकार जो दक्खिन की दिशा को चलेगा उसको उत्तर की कोई खबर न होगी और न वह उत्तर के पवित्र स्थान मे पहुच सकता है। ऐसा नहीं हो सकता कि एक ही आदमी एक ही समय में दोनों ओर का सफर कर सके। मिसमेरेज्म का साधन प्रकृति वादी materialism और अहङ्कारी बनाता है और योग आत्म वादी Spiritualism और निरहङ्कारी बनाता है। यह दोनों का भेद है।

भविष्य तथा स्वर्ग और नर्क

उत्तर की ओर जाने वाले मुसाफिर को चाहे इस समय भले ही थोड़ा कष्ट उठाना पड़े परन्तु आगे चलकर उसके लिये एक दिन ऐसा आता है कि जिसमें वह हिमालय की तपोभूम में पहुँच कर कैलाश के दर्शन करेगा। मान सरोयर के अमृतमयी जल में डुबकी लगायेगा, पतित पावनी सुरसरी गंगा का पीयूष बिन्दु अपनी जिह्वा की नोक पर लेकर अमर बनेगा। उस समय वह कृतकार्य्य हो अपने आने जाने (आवागमन) से मुक्त हो कर शान्ति और आनन्द के दिव्य लोक में अपने को देखेगा। दुख और अशान्ति का सामना भी उसे कभी नहीं होगा यह श्रेय अर्थात् कल्याण के मार्ग पर चलाने का फल मिलेगा।

दूसरी ओर अर्थात् प्रेय मार्ग (प्यारा रास्ता) पर चलने वाले पथिक दुर्दशा में पड़ जायेंगे। उनको कुछ दूर आगे चलकर ही कष्टों का सामना करना होगा। अन्त में समुद्र के खारी जल में डूबते हुए दिखाई देंगे। अनेक मगर-मच्छ और घड़ियाल मुँह फाड़े हुए उनपर आक्रमण करेंगे। भँवर में पड़े हुए प्राणी की तरह यह विकलता के साथ अपने को डूबता हुआ देखेंगे। वहाँ पर कोई बचाने वाला व रक्षा करने वाला उनका न होगा। नचिकेता और यम के सम्वाद के रूप में उपनिषद बतलाती है—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीत।

तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते॥

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्य मेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।

श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥

अर्थात्—श्रेय मार्ग और है, और प्रेय मार्ग और है। यह दोनों ही भिन्न २ फल वाले हैं। मनुष्य के लिये और कोई मार्ग ही नहीं है वह इन दोनों में से किसी एक में अवश्य बँधा रहता है। श्रेय-कल्याणकारी, बंधन से छुटाने वाला है और प्रेय बंधन में फंसाने वाला है। इसमें पड़कर मनुष्य जन्म के फल से पतित हो जाता है, श्रेय-निवृत्ति है, ज्ञान है और आनन्द है परन्तु प्रारम्भ में कष्ट दायक है। और प्रेय-अविद्या, है, प्रवृत्ति है और विषयवासनाओं का मार्ग है, यह आदि में सुखकारी प्रतीत होता है परन्तु इसका अन्त बहुत बुरा दुखदाई है। मनुष्य पू—

में पड़कर 'प्रेय' को ही सब कुछ समझ बैठता है, उसी पर चल पड़ता है और अन्त में पछिताता है। श्रेय मार्ग पर-आदि में कष्ट दायक होने के कारण लोग कम चल पाते हैं परन्तु जो वीर मन को थोड़ासा कस के उन कष्टों को झेलते हुये दृढ़ता और साहस के साथ आगे बढ़ जाते हैं उनका कल्याण हो जाता है और वह हमेशा के लिये दुःखों से छुट जाते हैं।

सार यह है कि जो धन, वैभव और मान बड़ाई तथा मनकी विषयलिप्सा में फंसकर संसार के ही हो रहते हैं वह प्रेय मार्ग के जाने वाले हैं। अभी चाहे वह मगन हो लें पर थोड़े दिन पश्चात् उनको यातना सहनी पड़ेगी, और नर्क का दुःख झेलना पड़ेगा। उस समय शिर धुनेंगे और पछितायेंगे और जो श्रेय मार्गी हैं वह ब्रह्मानन्द का रस पीयेंगे और सुखी होंगे।

श्रेय परमार्थ है, और प्रेय संसार है। श्रेय विद्या है और प्रेय अविद्या है। श्रेय आत्मा की ओर ले जाता है और प्रेय दुनियां में लाके फंसा देता है। श्रेय ब्रह्मानन्द का रस पान कराता है, और प्रेय विषयानन्द का भोग कराता है। यह निवृत्ति है, और यह प्रवृत्ति है। यह हितकारी है और यह अहितकारी है। मनुष्य को उचित है कि अपने हानि-लाभ तथा कर्तव्य-अकर्तव्य पर विचार करता हुआ अपने लिये मार्ग पकड़े और फिर हिम्मत और धैर्य्य के साथ कष्टों की परवाह न करता हुआ चलता चले।

मैस्मरेज्म करने वाले, तथा मान-बड़ाई या प्रशंसा के लिये सिद्धि या शक्तियों से काम लेने वाले योगी संसारी जनों की तरह प्रेय मार्ग के ही पथिक हैं न कि श्रेय के, इसलिये कि जैसे और दुनियाँदार वैसे ही यह भी पक्के दुनियाँदार। हम इन सज्जनों से अपील करेंगे कि इन झंझटों को त्याग वह ईश्वर भजन में दत्त-चित्त हों। इसके द्वारा उनका ही उद्धार नहीं होगा बल्कि वह जगत् के अनेक प्राणियों को इस भव बन्धन से मुक्त करने में समर्थ होंगे।

बाल

बालों का प्रकृति से बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध है। बाल मनुष्य के सम्पूर्ण विचारों को तथा उसके गुण-अवगुण को खींच के अपने अन्दर भर लेते हैं। मनुष्य के जैसे भाव और जैसे विचार होंगे वह सब सूक्ष्म रूप से बालों में आजायेंगे। तुमने देखा होगा कि कई लोग केवल किसी मनुष्य के शिर से कटे हुये बालों को ही छूकर उसका सारा हाल बता देते हैं। इसका कारण और कुछ नहीं है केवल बालों की परीक्षा है जो जो लोग इस विद्या का अभ्यास कर लेते हैं वह बालों द्वारा ही सब कुछ जान जाते हैं।

बाल मैग्नेटिक पावर को देर में खींच पाता है परन्तु जब उसमें असर आ जाता है तो उसके द्वारा बड़े २ काम हो सकते

हैं। साइकोमैटरी विद्या वाले दूर देश के रोगियों से बाल मगा कर उसके रोग का पूरा ब्यौरा लिख भेजते हैं। प्राचीन काल के जादू और टोना इत्यादि में बालों से बहुत काम लिया जाता था। डाकनी स्त्रियाँ चोरी से दूसरे के बच्चों के बाल काट लाती थीं और उन पर अमल करती थीं। बहुत दिनों की फर्रुखाबाद की बात है हमारे एक मित्र की आयु तीस वर्ष से ऊंची हो चुकी थी। विवाह हुये भी बहुत समय हो चुका था परन्तु सन्तान कोई न थी। उनकी वृद्धा मा और स्त्री को यह चिंता बहुत सताया करती थी। किसी ने कह दिया कि किसी पुत्रवती स्त्री के शिर के जूड़े के यदि थोड़े से बाल काट के तुम मुझे दे सको तो मैं एक ऐसा उपाय करदू कि जिससे तुम्हारे सन्तान होने लगे।। बहुत दिनो तक यह दोनों सास-बधू इसी ताक में रहीं परन्तु कहीं मौका नहीं लगा।। एक दिन घर पर इनके यहा कुछ स्त्री-पुरुष मैहमान आये, वह इनके घनिष्ट सम्बन्धी थे। उत्तम २ भोजन तैयार कराये गये, सबको आदर पूवक खिलाये गये, और सब को आराम से सुला दिया गया।

रास्ते की थकी मॉदी वह सौभाग्यवती जब आराम की निद्रा लेने लगी इन दोनों स्वथान्ध स्त्रियों ने उसके एक बालिश्त जूड़े के बाल कैंची से काट के कहीं गायब कर दिये और आप दोनो दूसरे कोठे में जा सोई।

सुबह को इसकी चर्चा फैली, बड़ी लड़ाईयाँ आपस में हुई परन्तु स्वार्थी विमर्षी सुनता है उसे शर्म हया नहीं होती अन्त

में वह लोग सब उसी समय वहा से चले गये। पीछे क्या हुआ हमको पता नहीं है।

कंघी

शरीर में जो कुछ भी गुण-अवगुण तथा रोग होते हैं उन सब का बहुत जियादा असर बालों में मौजूद रहता है। बालों से कंघा ले लेता है, इसी लिये पुराना नियम था कि किसी दूसरे का कंघा अपने शिर में नहीं डालते थे। बालो से कंघा कितनी अधिक तादाद में चुम्बकीय शक्ति खींचता है इसकी परीक्षा की एक क्रिया नीचे लिखते हैं प्रत्येक मनुष्य उसको आजमा सकता है :—

परीक्षा

हलके और सफेद कागज के छोटे-छोटे टुकडे फाट के जमीन पर रखलो, फिर लकड़ी या सींग के एक कघे को लेकर कई बार अपने शिर में फेरो, (कंघा फेरने के समय बाल बिलकुल खुश्क हों उनमें तेल व ग्लेसरीन इत्यादि कोई वस्तु न पडी हो) फिर उस कंघे को कागज के टुकडों के समीप लाओ। तुमको देख के आश्चर्य होगा कि वह कागज के टुकड़े पृथ्वी से उठ कर कघे में चुपट गये हैं परन्तु यह असर थोडी ही देर रहेगा।

मृतक

जीवत प्राणी ही में नही, बल्कि मृतक शरीर के बालों में

भी विद्युत शक्ति ४८ घन्टे तक पाई जाती है उसकी परिक्षा भी इस प्रकार कंघे द्वारा होती है।

रोगी

वालों की शक्ति जानने के लिये यूरुप के साइंसदानों ने कई प्रकार की परीक्षायें रोगियों के द्वारा की हैं। किसी रोगी के शिर के वाल स्वस्थ (तन्दुरुस्त) मनुष्य के बाँध देने से वह रोग पैदा हो जाता है कि जो उस रोगी को था।

जैसे एक मनुष्य के शिर के किसी भाग में दर्द रहता था उसके थोड़े बाल काट के किसी तन्दुरुस्त आदमी के शिर पर बाँध दो (परन्तु इसके वालों को उस्तरे से मुड़वा देना चाहिये) आप देखेंगे कि तीन या चार घन्टे के भीतर इस मनुष्य के भी उसी भाग में दर्द होने लगा है कि जिस भाग में उसके था यह सब बातें बतला रही हैं कि बाल बहुत कुछ जानदार के असर को खींचते हैं।

आसन

भजन पूजन के लिये सबसे श्रेष्ट कुशासन है। इसलिये कि 'कुश' किसी प्रकार के असर को नहीं लेता। पृथ्वी के अन्दर विद्युतशक्ति (Electricity) रहती है पृथ्वी के परिमाणुओं में मनुष्य व पशुओं के गुण-अवगुणों का प्रभाव रहता है। 'कुश' उन सबको पृथ्वी में ही रोके रहता है। साधक व अभ्यासी तक उसका प्रभाव नहीं पहुँचने देता कुश के इन गुणों को जान

के ही ऋषियों ने कुशासन सबसे अधिक पसन्द किया था।

मनुष्य जब एकाग्रता के साधन करता है तो उस समय शरीर के अन्दर रहने वाली विद्युत शक्ति बड़े प्रबल वेग के साथ सारे शरीर में घूमने लगती है। यह उसका साधन चाहे प्राणायाम सहित हो अथवा केवल ध्यान योग हो दोनों ही में ऐसा होता है। उस समय यह भय रहता है कि शरीर की बिजली, पृथ्वी की बिजली से न टकरा जाये नहीं तो बहुत बड़ी हानि पहुँचने की सम्भावना होती है। इस भय से बचने का उपाय केवल यही है कि खाली धरती पर बिना कुछ बिछाये कभी भजन न करे। प्राचीन लोगों ने कुश व ऊन के आसन का विधान दिया था, सूत व रेशम का वस्त्र उसके ऊपर बिछाते हैं। इन सब में साइन्स थी। ऊन भी पृथ्वी से आने वाले असर को रोकती है परन्तु सूती कपड़ा नहीं रोक सकता। इस लिये प्रथम कुशासन, उसके ऊपर ऊनी आसन फिर उसके ऊपर कोमल सूती वस्त्र बिछा के साधक को समाधि में जाना चाहिये। यह नियम योगियों का था।

कपड़ा

मैडीकल साइन्स बताती है कि ऊनी वस्त्र और शरीर के बीच में एक सूती कपड़ा अवश्य होना चाहिये नहीं तो कई प्रकार के त्वचा रोग (Skin disease) हो जाने की आशंका रहती

है, इसी सिद्धान्त पर ऋषियों ने ऊनी आसन के ऊपर सूती वस्त्र बिछाने की पद्धति निकाली थी।

आसन कठोर वा खुरदरा होने पर पाव में चुभेगा उस समय मन ध्येय की ओर से हट कर पाँव की ओर आजायगा इस लिये आसन सुख दायक नरम होना चाहिये। इनके अतिरिक्त और भी कारण हैं जिनको हम नीचे बताते हैं।

मृग चर्म

कुश सतोगुणी बनस्पति है, भेड कि जिसकी ऊन ली जाती है सरल स्वभाव वाला प्राणी है इस लिये इन दोनो पर बैठने से सतोगुण और सरलता शीघ्र आती है। इसी प्रकार मृग चर्म का प्रभाव है। हिरण में सीधापन और भोलापन होता है उसके चर्म में भी यह गुण रहते हैं इसके सेवन से बुद्धि सात्वकी जल्द बनती है परन्तु व्याघ्र चर्म साधुओं के लिये अच्छा नहीं होता, वह क्षत्रियों के लिये है उस पर बैठने वाले में गर्मी, क्रोध वीरता और साहस के परिमाणु प्रवेश होते हैं और उसको वैसा बनाते रहते हैं।

ऊनी कम्बल

यह हम ऊपर बता आये हैं कि बाल असर को देर में लेते हैं और ले लेने पर जल्द उसको खारिज कर देते हैं इस लिये ही हमारे यहा कम्बल लोई इत्यादि पवित्र माना गया है। सूती कपड़ा दूसरे मनुष्य का धारण करने में लोगों को संकोच होता

है परन्तु ऊनी कम्बल इत्यादि ओढ़ने में कोई अड़चन नहीं होती इन सब बातों में साइन्स थी कि जिसको आज कल हम लोग भूल गये हैं। इसका सुबूत नीचे है।

मिस्मराइजर जब किसी रोगी पर अमल करते हैं तो उस समय यह रोगी यदि कोई ऊनी वस्त्र ओढ़े होता है तो उसको हटवा देते हैं क्योंकि ऊनी वस्त्र उनके असर को रोगी तक नहीं पहुँचने देता बीच में ही रोक लेता है।

शुद्धि

यह लोग कभी २ बालों में अपनी चुम्बकीय शक्ति भर के रोगियों के अच्छे करने के लिये दूर देशों में भेजते हैं उनके सेवन द्वारा रोग शान्त हो जाते हैं परन्तु ऐसा करने मे प्रथम बालों को शुद्ध किया जाता है। उन बालों में से उस असर को दूर किया जाता है कि जो उस प्राणी से बालों मे आया था कि जिसके बाल थे। उसका तरीका यह है कि पहले बालो को पानी में खूब उबालो फिर खुश्क जमीन में इन्हें गाड़ दो। अग दिन बाद निकाल कर और गरम पानी से धो डालो यदि उनकी रंगत में फर्क आजाय तो समझ लो कि यह शुद्ध हो गये और यदि अभी ऐसा न हुआ हो तो ५ व ७ दिन के लिये फिर पृथ्वी को सौंप दो। पृथ्वी माता उनकी चुम्बकीय शक्ति को खींच लेगी। कोई २ हिंदू मातायें अपने बच्चों के रोग निवृत के लिये उतारा करती हैं उसमें कई वस्तुयें होती हैं उनके साथ २ बाल भी होते हैं। इसका सिधान्त भी सम्भव है यही हो। उतारा करना आज-

यह ढकोसला समझा जाता है परन्त यदि उसके साथ मनुष्य की (will) इच्छा शक्ति शामिल हो तो वह काम दे जाता है और पिछले मिस्मराइजरों का यह कोई तरीका होगा।

रेशम और भोज पत्र

रेशम में भी यह गुण है कि वह दूसरे के असर को रोक लेता है यह बात मिस्मरेजम की साइन्स से इस तरह पता चलता है कि जब यह लोग ऐसे बालों को मैग्नेटाइज्ञ करके किसी रोगी के पास भेजते हैं तो सूती कपड़ा में नहीं लपेटते हैं ताकि उसके छूने वाले के हाथों के प्रभाव से इसका असर न बिगड़ जाय, बल्कि रेशम या भोज पत्र में खूब लपेट के देते हैं। उस समय ले जाने वाले को आज्ञा होती है कि उन को पृथ्वी पर मत रखना, बिना जरूरत इनको न खोलना, खोलते समय कोई मनुष्य रोगी व रोगी के घर वालों के अतिरिक्त इनको न छुये। खुली हुई हवा और धूप से इनको बचाये रहना। जिस समय कोई खोले तो हाथों को खूब धोकर पवित्रताई से खोले इत्यादि।

इन उपरोक्त बातों पर ध्यान देने से यह अनुमान होता है कि रेशम और भोज पत्र ही एक ऐसे गुण रखने वाले पदार्थ हैं कि जिनमें होकर विद्युत शक्ति पास नहीं होती। इसी सिद्धांत पर प्राचीन समय से यंत्र-मन्त्र के लिये भोजपत्र और भजन-पूजन के समय रेशमी वस्त्र धारण करने का रिवाज चला होगा।

लौंग–नमक और जल इत्यादि

इस साइन्स द्वारा इस बात की भी तहकीकात हुई है कि मिस्मरेज़ी या चुम्बकीय शक्ति के प्रभाव को लौंग, नमक और जल तथा काली मिर्च बहुत जल्द खींचती हैं और इनमें यह असर अन्य वस्तुओं के मुक़ाबले देर तक क़ायम रहता है। असर देते समय यह लोग उस वस्तु को बायें हाथ की हथेली पर उङ्गलियों के पौरों से छूते हैं, फूंक मारते हैं और त्राटक के द्वारा उसमें शक्ति पहुंचाते हैं उस समय उङ्गलियों में से सुरसुराहट के साथ कोई चीज़ बाहर की ओर जाती हुई मालूम देती है जिस समय ऐसा होने लगे समझलो कि शक्ति जा रही है।

ऐसी मिस्मराइज़ की हुई वस्तु को दूसरी जगह ले जाकर यदि अधिक वस्तु में मिला दिया जाय तो उस सारी वस्तु में मिस्मरेज़ी असर आ जाता है जैसे जल के एक ग्लास को एक घड़े पानी में छोड़ दिया जाय तो घड़े का सारा जल प्रभावित हो जायगा, उस जल के सेवन से रोगी का वही रोग दूर हो सकता है कि जिसके लिये वह भेजा गया है। जैसे यदि दस्त लाने के लिये भेजा गया है तो दस्त आवेगा और यदि दस्त बंद करने के लिये भेजा गया है तो दस्त बंद हो जायेंगे।

एक डाक्टर ने लिखा है कि एक बार मैंने ऐसा किया कि एक ग्लास पानी को इस इच्छा से मिस्मराइज़ किया कि इसके पीने वाले के शिर में दर्द पैदा हो जाय, ऐसा ही हुआ। दूसरे डाक्टरों ने लायकर मारफिया (L. Marph.) इत्यादि देकर—

बन्द करना चाहा परन्तु वह बंद नहीं हुआ। मैंने दूसरी बार एक ग्लास पानी मिस्मराइज इस इच्छा से किया कि इसका दर्द बंद हो जाय और वह पीते ही बन्द हो गया।

, जल में द्रव्यता (पतलापन) होने के कारण प्रभाव को बहुत जल्द रोगी तक पहुचाता है। जल के लिए यह आवश्यकता नहीं कि मरीज इलाज करने वाले के पास ही हो, यह दूर देश को भी भेजा जा सकता है। डाक्टर कोट ने लेचर पोल बैठे हुये एक ऐसे पेट के रोगी को अच्छा किया था कि जो वहां से दस मील दूर ब्लैक बर्न में रहता था और किसी दवा से अच्छा नहीं हुआ था।

कई महीने हुये एक वृद्ध सन्यासी मेरे यहां आये थे वह कहते थे कि एक बेर मैं काशी पहुंचा उस समय मेरी आयु ३२ या ३४ वर्ष की थी, एक कसेरे (बर्तन बेचने वाले) के यहां ठहरा, उसका लड़का बीमार था। मेरे दिलने कहा कि इसका भोजन करते हैं लाओ शक्ति प्रयोग के द्वारा इसका इलाज करें। ऐसा ही किया और वह अच्छा हो गया। इस कार्य्य से काशी में बड़ी प्रशंसा फैली। रोगियों का मेला लगने लगा। मैं कुछ लेता न था, उनसे दान-पुण्य करा देता था। मैंने मिस्मरेजम द्वारा उनका इलाज आरम्भ कर दिया। छै महीने तक यही झंझट रहा उसके पश्चात् मैं घबड़ा गया। उस समय एक युक्ति मुझे सूझी। थोड़ी दूर पर एक छोटी सी तलैय्या थी। मैंने उसके पानी को

मिस्मराइज किया और रोगियों से कह दिया कि उस तलैय्या का जल पियो अच्छे हो जाओगे। मेरा पीछा छूट गया और लोग तलैया पर आने लगे। फिर मैं वहां से चला आया और आज तक इस काम को नहीं किया, क्योंकि यह ईश्वरीय मार्ग का बाधक है।

लौंग या कालीमिर्च

हिन्दोस्तान के झाड़ने वालों को तुमने देखा होगा कि लौंग या कालीमिर्च को फूंक कर वह रोगियों को दिया करते हैं। मिस्मराइजर लोग भी इनसे बहुत काम लेते हैं। इन दोनों वस्तुओं में मेग्नेटिक पावर खींचने की बहुत शक्ति है यह बात साइन्स से साबित हो चुकी है, और यह कुपच और बेहोशी को भी दूर करती हैं गरमी और ताकत पहुंचाती हैं। यह लोग फूलदार लौंगों को लेकर सीधे हाथ की दो उङ्गलियों से पकड़ के उनमें करैन्ट पहुंचाते हैं पीछे इच्छा शक्ति के साथ फूंक मारते हैं, बस पर त्राटक करते हैं इस प्रकार उनमें असर देके कागज या रूमाल में बांध कर देते हैं ताकि किसी का हाथ उस से न छुए, उसे रोगी के पास तक पहुंचाते हैं और पानी में पीस कर उसको पिलाते हैं। इसी प्रकार सेंधे नमक की डेली, और मिठाई को भी मिस्मराइज करते हैं।

कागज व फलालैन

तीन इन्च लम्बा और इतना ही चौड़ा कागज लेकर उसको

बीस मिनट तक धूप में रख कर सुखाते हैं फिर उस पर आ
ग्वाने का एक नक्शा बनाते हैं उसमें, "आराम २" ऐसा लिर
देते हैं। फिर सीधी उङ्गली से हर एक खाने में करेन्ट देते हैं फि
फूंक मारते हैं और उसका तावीज बना के मरीज के बांध देते हैं
लगभग यही तरीका हिन्दू-मुसलमानों के यहां तावीज और गन्ड
का है। शिर और छाती पर बांधने के लिये फलालैन का ऐस
टुकड़ा कि जो बीच थान में लिया गया हो और जिसमें छा
दूसरे का न लगा हो लेकर मिस्मराइज करके रोगियों को देते हैं

यह सब बातें ऐसी ही हैं कि जिनको इस देश के झाड़-फूं
या गंडा-तावीज करने वाले 'सयाने लोग' किया करते हैं यं
बातें साबित कर रही हैं कि मिस्मरेजम योग नहीं बल्कि एवं
प्रकार का सयानपत है। भेद केवल इतना है कि यहां के सयाने व
बाजीगर मूर्ख-अविद्वान और नीच जाति के ही अधिकतर मनुष्
होते हैं इस लिये वह इसके कारण को न तो खुद ही जानते है
कि उनके द्वारा करेन्ट कैसे दूसरे तक पहुंचती है और न किस
को साइन्टीफिक तरीके पर समझा सकते हैं इसी लिये पढ़े-लिरं
लोगों का विश्वास उन पर नहीं है। और यह यूरुप वाले उसवं
साइन्स से साबित कर देते हैं। आजकल के सभ्य समाज वं
लोग झाड़-फूंक और तावीज-गंडे की तो दिन रात निन्दा करं
देखे जाते हैं परन्तु वही तालीमयाफ्ता मिस्मराइजरों की जौत्तिः
साफ करते रहते हैं। यह अपनी अज्ञानता से इसको और सम
झते हैं और उसको और।

योग इन सबसे भिन्न है। वह प्राणी को संसार की ओर से

खींच के परमात्मा की ओर ले जाता है । [illegible]
अन्नमयकोष मे ऊपर को उठना है और दूसरे को उठाता है।
योग इन सांसारिक कष्टों को मिथ्या और कल्पित समझने की
शिक्षा देता है। योग कहता है कि शरीर से आत्माभिन्न है। तुम
आत्मा हो, न कि शरीर। आत्मा द्रष्टा है और शरीर दृश्य है।
आत्मा भोक्ता है और शरीर भोग्य है। आत्मा अजर-अमर अवि-
नाशी है। शरीर के कष्ट और रोगों से आत्मा का उतना ही सम्ब-
न्ध है कि जितना गृह में रहने वाले का गृह से होता है। घर के
जीर्ण होने पर उसमें रहने वालों को थोड़ा क्लेश होता है, परन्तु
गृही हाथ-पांव और मिट्टी-चूने से उसकी मरम्मत करता है
न कि अपनी योग शक्ति से। जो योगी इन झगड़ों
में पड़ जाते हैं वह यहीं के हो रहते है। वह अपने
उद्देश्य में कभी सफल नहीं हो सकते। यदि कोई इङ्गलैंड को
जाने वाला मुसाफिर अपनी कमाई के पैसे को भारतवर्ष के
मकानों की मरम्मत में ही खर्च कर डाले तो जहाज का किराया
कहां से चुकायेगा और अपने अभीष्ट स्थान तक कैसे पहुँचेगा
यही हाल इन करामात दिखाने वालों का है।

योग शक्ति वा आत्मबल

ईश्वर दर्शन की इच्छा करने वालों को इनसे
बहुत बच के चलने की जरूरत है। हां अत्यन्त आवश्यकता होने
पर कभी थोड़ा सा उससे काम लेने में अधिक हानि नहीं होती
परन्तु रात-दिन इसी कार्य्य को करते रहने से योगी पतित

हो सकता है इस लिये ही शास्त्रों ने विभूतियों में बचने की आज्ञा दी है। थोडा २ सा करने पर भी आगे चल कर स्वभाव बन जाता है। लोग स्वार्थ वश उसको घेरने लगते हैं और वह इन कामों के करने के लिये मजबूर हो जाता है इस लिये जहा तक हो इनमे बचने ही में भलाई है।

मिस्मराइजर–योग वा आत्मबल का मुकाबिला नहीं कर सक्ते। योगी मे इन से सहस्त्रों गुनी अधिक शक्ति होती है जिन कामों को यह लोग कम से कम तीस मिनट मे करते हैं उनकों योगी पलक मारते कर सकता है। योगी को आख मिलाने फूंक मारने तथा हाथों से करैन्ट देने की आवश्यकता नहीं होती उसके अन्दर ऐसा बल होता है कि जरा ख्याल करतें ही काम हा जाता है। परन्तु सच्चे योगी का ध्यान इधर झुका लेना ही महा कठिन है, वह हर समय ईश्वर चिन्तन में अपने को मगन रखता है। दिव्य स्थानों की सैर करता रहता है। वहां से खींच के लौकिक व्यवहार में उसको ले आना असम्भव सी बात है।

दिव्य दृष्टि खुल जाने तथा यथार्थ ज्ञान होंने पर उसे यह प्रत्यक्ष होने लगता है कि सांसारिक सुख-दु ख प्राणियों के भोग हैं इनका भुगत जाना ही अच्छा है। वह भगवद्‌ गीता की इस शिक्षा को याद कर "भ्रामयण सर्व भुताना यन्त्रारूढानिमायया" ईश्वर इच्छा पर अपने और दूसरों को छोड बैठता है और तमाशा देखता है ईश्वर के कार्य्यों में दखल देना यह योगी के लिये पाप है।

भोग

कर्म फिलासोफी यह बतलाती है कि कर्म बिना भोगे समाप्त नहीं होता इस लिये योगी उस भोग को रोक्ता नहीं है हां कभी दया उमड़ने पर उसको भगवान से प्रार्थना कर हलका करा देता है ऐसा करने पर उसका वेग कम हो जाता है और धीरे २ अधिक काल में उसको भोग लेता है। यह संतों का नियम है।

रोगाकर्षण

हमने ऊपर बताया है कि योगीजन अधिकतर इन कार्य्यों को नहीं करते और यदि दया आजाने पर कभी करते हैं तो वह मैसमराइजरों की तरह न तो आंख मिलाते हैं, न फूंक मारते हैं और न हाथों से करैन्ट पहुंचाते हैं। वह आंख बन्द करके एक सेकेन्ड ही में ब्रह्म की उन शक्तियों को कि जो रोग निवारण करतीं हैं खींच कर रोगी की ओर झुका देते हैं और आप अलग हो बैठते हैं ऐसा करते ही क्षण मात्र में वह काम हो जाता है कि जिसको मैसमराइजर घंटे में या आध घंटे में कर सकता है। हमको ऐसे अनेक दृष्टान्त याद हैं परन्तु अपनी बात के समझाने के लिये उनमें से छोटा सा एक नीचे लिखते हैं।

दृष्टान्त

मेरे घर में Nervous pain का दौरा कभी २ हुआ करता था जिस समय यह दर्द उठता था उस समय एक ओर की

और कनपटी में इतना कष्ट होता था कि तीन-चार दिन चैन नहीं पड़ता था अनेक औषधियाँ करने पर भी वह नहीं रुकता था और न कुछ उन दिनों में भोजन इत्यादि खाया जाता था।'

एक बेर श्री महात्माजी (श्री गुरुदेव) पधारे हुये थे। वर्षा ऋतु थी, पानी बरस रहा था, उनकी यहां आने की सूचना पाकर आठ-दस प्रेमीजन बाहर के भी आ गये थे और शेष यहाँ के लगभग तीस-चालीस मनुष्य बैठे सतसंग कर रहे थे और उनके अमृतमयी उपदेशों को सुन रहे थे। रात्रि के लगभग दस-ग्यारह बजे होंगे। मैं उठ के अन्दर गया तो देखा-कि वह औंधे मुख पड़ी दर्द से चिल्ला रही हैं। पूछने पर पता चला कि दर्द उठ खड़ा हुआ है।

बड़ी चिन्ता हुई, इतने मेहमान बाहर के ठहरे हुये हैं, हम सब लोग हैं, इनके बीमार पड़ जाने पर सबकी सेवा सुश्रूषा का क्या प्रबन्ध होगा क्योंकि घर में कोई अन्य स्त्री न थी। झट-पट बाहर आया और अलमारी खोल के शीशी में एक Mixture बनाने लगा। यह देख-आप बोले-क्या हुआ। मैंने विनय किया डाढ़ में बड़े जोर का दर्द उत्पन्न हो गया है। कहा-कैसा दर्द है, 'नर वस पेन' तो नहीं है ? मैंने उत्तर में कहा-हां यही मालूम देता है। बोले--यहाँ हमारे पास आओ। मेरे हाथ की हथेली पर अपनी उङ्गली से एक ऐसा गोल निशान बनाया जैसे उर्दू की छोटी 'हे', होती है और कहा-दर्द की जगह ऐसा

गोल चक्र उङ्गली से खींचते हुये यह ख्याल करना कि दर्द बन्द हो गया। मैंने ऐसा ही किया। उसी समय एक सेकेन्ड में दर्द बंद होगया और उस दिन से आज वर्ष गुजर गई फिर नहीं हुआ। यह शक्ति थी। मिस्मराइजर को इतने काम के लिये आध घंटे से एक घंटा खर्च करना पड़ता तब भी इतनी सफलता न होती। इसी प्रकार के अनेकों दृष्टान्त हमको मालूम हैं परन्तु विस्तार के भय से यहाँ उनका वर्णन करना हम उचित नहीं समझते।

मामूल

मिस्मराजर अपनी शक्ति से कि एक लड़के को बेहोश करते हैं फिर उसके सूक्ष्म शरीर को बाहर भेज कर उस से गुप्त बातों का पता पूंछा करते हैं। ऐसे लड़के को उनकी परिभाषा में मामूल कहते हैं। यदि लड़का निर्बल प्रकृति का है तब तो उसकी मानसिक शक्ति के असर को वह ले लेता है और उनकी इच्छा नुसार कार्य करता है नहीं तो नहीं। योगी ऐसा नहीं करते वह अपने सूक्ष्म शरीर को ही बाहर भेज सकते हैं और उसीके द्वारा बिना किसी दूसरे के सहारे सारे काम करते हैं। यह इन दोनों का भेद है।

सद्गुरु

शक्ति शाली गुरु नित्य प्रति रात्री के समय अपने सारे शिष्यों की खबर सूक्ष्म शरीर के द्वारा लेता है और उनको सहायता देता है जिन में ऐसी सामर्थ्य नहीं है वह बना वटी गुरु है उसके द्वारा उद्धार होना कठिन होता है। महा पुरुष अपने निवास के स्थानों को रजो गुण और तमोगुण के प्रभाव से शुद्ध कर डालते हैं जैसे कोई साधारण मनुष्य अपने बैठने से पहिले पृथ्वी को झाड़ू लगा लेता है वैसे ही संत जन अपने स्थान के वातावरण (Atmosphere) को नित्य प्रति बंदगी से साफ करते रहते हैं वहां के जल वायु तथा पृथ्वी के परिमाणुओं को पूर्ण सात्वकी बना देते हैं। वहां पहुँचते ही मनुष्य के भाव बदलने लगते हैं वह धीरे धीरे सतोगुण की ओर खिंचने लगता है और एक दिन सात्वकी बन जाता है।

तीर्थ

जिन स्थानों में पहुंच कर मनुष्य की प्रवृति कुकर्म की ओर से हट जाय तथा जहां की वायु के के प्रभाव से मनुष्य उत्तम भावों को लेने लगे उनको ही तीर्थ कहते हैं। महाराजा युधिष्ठर

ने वनोवास के समय ऐसे ही स्थानों की तीर्थ यात्रा की थी। महाभारत काल से पूर्व इसी प्रकार के शुभ स्थानों को तीर्थ माना जाता था। आज कल के तीर्थ वास्तव में तीर्थ नहीं रहे, यह हमको कु भावनाओं की ओर ले जाने वाले हैं इन तीर्थों में पहुँच कर धन और समय के नष्ट करने के अतिरिक्त और कोई फल नहीं मिलता। कहा जाता है कि तीर्थ स्वर्ग दाता हैं परन्तु अनुभव यह बतलाता है कि तीर्थ नर्क दाता हैं।

त्रिवेणी

'गंगा' तीर्थ है इसके स्नान से मुक्ति मिलती है। 'यमुना' तीर्थ है इसके मज्जन से मनुष्य सीधा स्वर्ग जाता है। सरस्वती तीर्थ है उसके दर्शन मात्र से ही हृदय में ज्ञान का सूर्य प्रदीप्त होता है। इन तीनों के मिलने (संगम) पर एक विचित्र शक्ति वाला तीर्थ राज बन जाता है कि जिसको "प्रयाग राज" कहते हैं। इस त्रवेणी के प्रभाव से धर्म, अर्थ काम, मोक्ष चारों पदार्थ मनुष्य को प्राप्त होते हैं ऐसा हिन्दू शास्त्रों का कथन है और वह ठीक है। तुमने उनके तात्पर्य की ओर ध्यान नहीं दिया इसलिये गलती खारहे हो अब सुनों :—

सतोगुण का नाम 'गंगा है। यह प्रेम और भक्ति की धार है, यही योगियों की सुषुम्ना नाड़ी है जो सीधी ब्रह्मरंन्ध्र को जाती है, इसी मार्ग से गमन करने पर मुक्ति होती है। यमुना कर्म है। कर्म हम को स्वर्ग तक पहुंचाता है। मुक्ति खाली कर्म से नहीं हो

सकती जब तक कि उसके साथ प्रेम और भक्ति का छींटा न हो इसलिये यह "रजोगुण" है । सरस्वती ज्ञान है, जो हृदय में गुप्त रहता है । यह स्थूल के नीचे दबा रहता है इसलिये तम है । सूक्ष्म शरीर द्वारा इसमें प्रवेश करना होता है स्थूल बुद्धि सरस्वती की वह धार है जो पंजाब में प्रगट रूप से बह रही है आगे चल कर वह गुप्त हो जाती है और पृथ्वी के अन्दर ही अन्दर बहती हुई प्रयाग में गंगा और जमुना से संगम करती है । यही सूक्ष्म बुद्धि है यही इड़ा-पिङ्गला और सुषुम्ना है । दोनों भौं के बीच आज्ञा चक्र में इनका मिलाप होता है । इसलिए इसी को प्रयाग राज तीर्थ कहते हैं । महापुरुषों के समीपत्व से ही इस स्थान में डुबकी लगाने का हमको सौभाग्य प्राप्त होता है और कोई उपाय इसका नहीं है इसलिये सत संग ही असली "तीर्थ" कहलाता है । ऐसे ही तीर्थ हमको मुक्ति के लिये व ईश्वर दर्शन के लिये अग्रसर करते हैं न कि वर्तमान काल के तीर्थ । जिस साधनों से रजोगुण और तमोगुण का प्रभाव हमारे ऊपर से दूर होजाय तथा जिन साधनों से सत से ऊपर उठ कर हम त्रिगुणातीत हो जाँय वही असली तीर्थ हैं ।

मिस्मरेज्म तमोगुणी व नेगेटिव Negativo शक्ति है जो हमको नीचे की ओर ढकेलती है और संसार में फँसाती है । इसके प्रभाव से हमारी बुद्धि मलि[illegible] [illegible]र अन्धकार से ढक जाती है । हमारे अन्दर मूढ़ता और [illegible] बढ़ जाता है कि जिसमें कर्तव्य अकर्तव्य हम को ना[illegible] मिथ्या

सत्य समझते हुए हम उसी के प्रयत्न में लगे रहते हैं। और योग के द्वारा हमको वह असीम ज्ञान प्राप्त होता है कि जिसके द्वारा विश्व के सारे रहस्य हमारी समझ में आजाते हैं और इस तरह हम अपने इन बन्धनों को त्याग मुक्त हो जाते हैं यही इन दोनों का भेद है। इसीलिये मिस्मरेज्म को साइन्स और योग को फिलासोफी का नाम दिया गया है।

करामात व सिद्धी

हमारे अन्तर में एक इन्द्री रहती है कि जिसको हिन्दू शास्त्र 'मन' और सूफी लोग 'नफ्स' कहते हैं। इस मन के पास दो दासियाँ व पत्नियाँ हैं जिनके नाम "इच्छा" और "कल्पना" हैं। मन हर समय ही इनके साथ भोग-विलास में लिप्त रहता है। वह इन दोनों के साथ विहार करता हुआ अधिकतर बाहर ही घूमा करता है यदि कोई वीर किसी प्रकार से भी मन की इन कल्पना और इच्छारूपी शक्तियों को उनके घर मनो मण्डल से बाहिर न निकलने दे तथा उनको उनके निज स्थान ही में रोक दे व कैद करले, तो थोड़े काल ही पश्चात् वह अनुभव करेगा कि उनकी यह दोनों शक्तियाँ अपूर्व बलवती बन गई हैं। जिस प्रकार प्राणी जब काम-काज और व्यवहार में अपनी (Energy) शक्ति खर्च करके बल हीन होता है Rest (आराम व निद्रा) लेकर उसको फिर अपने में भर लेता है उसी प्रकार मन का भ्रमण तथा व्यवहार बन्द कर देने पर वह अपनी खोई हुई शक्ति को संग्रह कर लेता है। ऐसा निग्रह करने पर मन जिन कामों के

ती हैं परन्तु स्थूल संसार का कोई कार्य उनसे सिद्धि नहीं ता, अथवा यों कहो कि सूक्ष्म भुवनों को छोड़ के स्थूल जगत और राजयोगी झुकना ही नहीं । तात्पर्य्य यह है कि स्थूल व हठ से और सूक्ष्म तत्त्व राजयोग से वेधे जाते हैं।

शरीर की शुद्धि या उसको निरोग बनाने के लिये हठयोगियों यहां छै प्रकार के कर्म किये जाते हैं जिनको उनकी भाषा में ठ कर्म कहते हैं"। इन्हीं षट कर्मों के अन्तरगत एक साधन टक' है। इसी त्राटक साधन को अङ्गरेजी में मिस्मरेजम कहते त्राटक हठयोगियों का एक साधन है, इसी को यूरुप वालों ने अपना लिया और एक अच्छे ढङ्ग से साइन्टीफिक तरीके पर को जांच-पड़ताल कर उसके लाभ तथा उसके करिश्में लोगों दिखाये। जड़वादी यूरुप की आंखों में चकाचौंध आ गया र वह लोग उसको बहुत बड़ी चीज समझने लगे।

यूरुप और अमेरिका में सेकड़ों स्कूल इसकी शिक्षा देने के ये खुल गये, वा कायदा उनका कोर्स बना दिया गया और स्त्रों मनुष्य उनमें दाखिल हो इसका साधन सीखने लगे।

हिन्दोस्तान के पढ़े-लिखे बाबू लोगों ने भी उन पुस्तकों को , इन बेचारों को अपने घर की तो खबर नहीं है क्योंकि की अज्ञान बुद्धि मे भारत वासियों को न कभी कोई विद्या ई और न अब है इनका-आदर्श यूरुप है । हिन्दुस्तानी लोग प वालों की नकल उतारने वाले हैं और वह भी मूर्खता के । वह कभी नहीं विचारते कि इसमें हमको हानि होगी वा

करने का साहस अभी तक नहीं करता था एवं जो कार्य
सामर्थ्य से बाहर थे उनके करने को भी तैयार हो जाता है।
मनुष्य जितना जितना अधिक समय इस काम को
देता है उतना ही बल बढ़ता जाता है। उस समय यह
शालिनी मन पत्नी आज्ञा देने पर ऐसे-ऐसे असम्भव काम
करके दिखाती हैं कि जिनको देख कर संसार चकित हो उठता
बस मनोबल will के द्वारा कोई असाधारण कार्य्य करके दि
देना ही "सिद्धी व करामात" कहलाती है।

वर्तमान काल का साधु समाज इन्हीं सिद्धियों का शि
बन चुका है। इनके अन्दर से साधुता तो विदा हो गई है
चमत्कार रह गये हैं, थोड़ी बहुत मिहनत करके जो कुछ श
संग्रह कर लेते हैं उसको अपनी प्रतिष्ठा तथा धन बटोरने
सहारा बना लेते हैं, और सांसारी लोगों को करामातें दिखा
फिरते हैं।

शास्त्रों ने सिद्धियाँ आठ प्रकार की बताई हैं। सिद्धियों के सहस्र
भेद हैं और सहस्रों भेद वाली सिद्धियों की प्राप्तिके लिये सहस्रों
प्रकार के साधन हैं। कई प्रकार की सिद्धियाँ आसनों के द्वारा ही
आजाती हैं कई प्रकार की सिद्धयाँ केवल जाप से आती हैं, कई
प्रकार की प्राणायाम और मुद्राओं द्वारा प्राप्त होती हैं यह सब
'हठयोग' की सिद्धियाँ हैं। राजयोग की सिद्धियाँ और होती हैं
यह अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार की धारणा द्वारा प्राप्त की
जाती हैं। यही सिद्धियाँ सूक्ष्म होने के कारण सूक्ष्म तत्वों का
ज्ञान कराती हैं। साधक को ऊपर उठाती हुई ब्रह्मलोक तक

ती है परन्तु स्थूल संसार का कोई कार्य उनसे सिद्धि नहीं ता, अथवा यों कहो कि सूक्ष्म भुवनों को छोड़ के स्थूल जगत और राजयोगी झुकता ही नहीं। तात्पर्य यह है कि स्थूल त्व हठ से और सूक्ष्म तत्व राजयोग से वेधे जाते हैं।

शरीर की शुद्धि वा उसको निरोग बनाने के लिये हठयोगियों यहां छै प्रकार के कर्म किये जाते हैं जिनको उनकी भाषा में षठ कर्म कहते हैं"। इन्हीं षठ कर्मों के अन्तरगत एक साधन त्राटक' है। इसी त्राटक साधन को अङ्गरेजी में मिसमरेजम कहते । त्राटक हठयोगियों का एक साधन है, इसी को यूरुप वालों ने अपना लिया और एक अच्छे ढङ्ग से साइन्टीफिक तरीके पर सको जांच-पड़ताल कर उसके लाभ तथा उसके करिश्में लोगों ो दिखाये। जड़वादी यूरुप की आंखों में चकाचौंध आ गया और वह लोग इसको बहुत बड़ी चीज समझने लगे।

यूरुप और अमेरिका में सेकड़ों स्कूल इसकी शिक्षा देने के लिये खुल गये, बा कायदा उनका कोर्स बना दिया गया और हस्त्रों मनुष्य उनमें दाखिल हो इसका साधन सीखने लगे।

हिन्दोस्तान के पढ़े-लिखे बाबू लोगों ने भी उन पुस्तकों को, ा, इन बेचारों को अपने घर की तो खबर नहीं है क्योंकि की अज्ञान बुद्धि में भारत वासियों को न कभी कोई विद्या ई और न अब है इनका आदर्श यूरुप है। हिन्दुस्तानी लोग प वालों की नकल उतारने वाले हैं और वह भी मूर्खता के । वह कभी नहीं विचारते कि इससे हमको हानि होगी वा

लाभ होगा, उन्हें तो वही करना कि जो एक यूरुपीय मनुष्य
रहा है।

"मूर्खता के साथ" कहने से हमारा मतलब यह है कि ये
ऐसे नक्काल हैं कि जो उनके गुणों को तो छूते नहीं और
गुणों को फौरन अपने में ले लेते हैं। यूरुप वालों की व्यवहार
सत्यता तथा परिश्रम के साथ धन उपार्जन करना तो इन्हो
सीखा नहीं, हा! साहिबी के ठाठ में धन बर्बाद करना फौरन
सीख लिया। आप तो बिगड़े ही थे अब स्त्रियों पर भी नम्बर
आ गया उनको पूरा मैम साहब बना दिया। योरपीय लेडी तो
किसी समय भी बेकार नहीं रहती, कुछ न कुछ करती ही रहती
हैं और यह नकली मैम साहब दिन भर पलङ्ग और कुर्सी तोड़ती
और बाल सवारती रहती हैं कि जिसका परिणाम आगे चल कर
यह होता है कि शरीर तो रोगों से घिर जाता है और धन हकीम
डाक्टर और फैन्सी चीजों की भेंट हो जाता है।

यूरुपीय गुरुओं से प्रशंसा सुन इन लोगों के दिल में भी
मिस्मरेज्म के लिये जगह हो गई। इन्होंने नहीं विचारा कि यह
वह इल्म है कि जिसको हमारे यहाँ के योगियों ने त्याग के
सपेरों, बाजीगरों और ओझाकर्म करने वालों को सिखा दिया था।
योग मार्ग हम को ईश्वर की ओर ले जाता है और मिस्मरेज्म ईश्वर
से विमुख करती हुई सांसारिक थोड़ी सी सिद्धियाँ दिला देती है।

मिस्मरेजम के चमत्कार

अभी तक की तहकीकात से यह पता चला है कि मिस्मरेजम
से जो कुछ सिद्धियां प्राप्त होती हैं वह यह हैं रोगों को दौर

न चिट्ठियों को पढ़ लेना, दूर देशों के मित्रों के पास
भेज देना, किसी निर्बल प्रकृति के मनुष्य तथा पशु पक्षी
ा बेकार करके उसको अपनी आज्ञानुसार चलाना,
इके को बेहोश करके उसके द्वारा छुपी हुई वस्तुओं का
पूछ लेना। दूसरे के दिल का हाल जान लेना, मरे हुये
की रूहों से बात चीत करना, तथा बात या कोई वस्तु
उसके मालिक का हुलिया बता देना और किसी लड़के
करके इच्छा शक्ति द्वारा उसको अन्तरिक्ष में लटका
ादि। साप बिच्छू इत्यादि विषैले कीड़ों के काटने का
मरेजम करने वाला निहायत अच्छा करता है। उसका
तथा बन्द लगा देना खाली नहीं जाता।

योग के चमत्कार

के चमत्कार इस ओर नहीं आते वह अन्तर मुखी बन
। वस्तुओं का ज्ञान कराते हे। अन्तरीय शब्द अन्तरीय
। अन्तरीय चक्र और कलाएं प्रत्यक्ष कराता है। मन,
अहंकार के रूपों को सामने लाके खड़ा कर देता है।
ः आत्मा का अनुभव कराता हुआ परमात्मा से मिलाप
-मरण के भय बन्धन से मुक्त करा देता है।
र है योग और मिस्मेरेजम का। योग निवृति मार्ग है
जम प्रवृत्ति मार्ग है। योग संसार से छुटाता है और
यहा गहरा फंसाता है। मिस्मरेजम वाला यदि
के मैं योगी हूं तो उसको झूठा समझो। मन एक है
संसार की ओर झुकादो और चाहे आत्मा की ओर।